दंसण मूलो धम्मो

# आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2498 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 27 अंक नं० 10

## अध्यात्म-पद

नहिं ऐसो जनम बारम्बार ।टेक ॥
कठिन कठिन लह्यो मनुषभव, विषय भजि मतिहार ॥1 ॥
पाय चिंतामन रतन शठ, छिपत उदधि मँझार।
अंध हाथ बटेर आई तजत ताहिं गँवार ॥2 ॥
कबहुँ नरक तिरजंच कबहुँ, कबहुँ सुरग विहार।
जगतमहिं चिरकाल भ्रमियो, दुर्लभ नर अवतार ॥3 ॥
पाय अमृत पांय धोवै, कहत सुगुरु पुकार।
तजो विषय-षिाय 'द्यानत', ज्यों लहो भवपार ॥4 ॥

चारित्र
ज्ञान
दर्शन

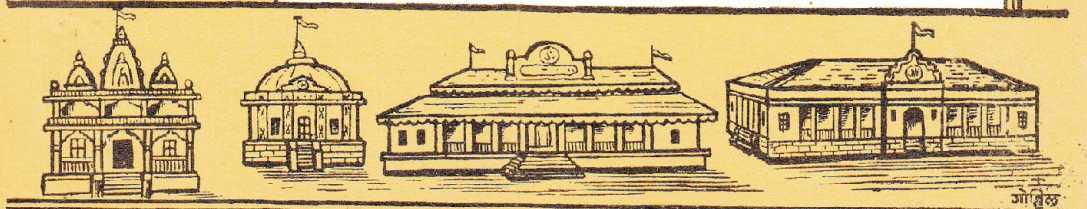

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

फरवरी : 1972] वार्षिक मूल्य 3) रुपये ( 322 ) एक अंक 25 पैसा [माघ : 2498

# नये प्रकाशन

**श्री समयसारजी शास्त्र (चतुर्थावृत्ति)**—यह भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवकृत सर्वोत्तम शास्त्र है जो अद्वितीय जगत्चक्षु ग्रंथाधिराज है। ज्ञानप्रवाद पूर्व में से आया हुआ और परिभाषणसूत्र रचना है। उस पर आत्मख्याति नामक संस्कृत टीका श्री अमृतचंद्राचार्य कृत सर्वोत्तम है। विशेष में कलशरूप श्लोकों का अन्वयार्थ भी दिया गया है। जिसमें ज्ञानी-अज्ञानी का स्वरूप अति स्पष्ट समझाया है। जीव-अजीव, कर्ता-कर्म, पुण्य-पाप, आस्रव-संवर-निर्जरा-बंध-मोक्ष, सर्वविशुद्धान, अनेकांत और साध्य-साधक आदि प्रयोजनभूत तत्त्वों का नय-विभाग सहित वर्णन है। मूल्य साढ़े सात रुपया लागत से बहुत कम है। पृष्ठ संख्या 650, पोस्टेजादि अलग। (नोट—यह शास्त्र जयपुर, बम्बई, कलकत्ता, भोपाल, इंदौर, सागर, विदिशा, आगरा, उदयपुर, नागपुर आदि नगरों में मुमुक्षु मंडल द्वारा भी प्राप्त हो सकेगा।)

**श्री समयसार-प्रवचन** (भाग-1) (द्वितीयावृत्ति)—गाथा 1 से 12 पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन। पृष्ठ संख्या 480, मूल्य 4.50।

**श्री समयसार-प्रवचन** (भाग-2) (द्वितीयावृत्ति)—गाथा 13 से 33 पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन। पृष्ठ संख्या 510, मूल्य 4.50।

**श्री समयसार-पद्यानुवाद :—**(चतुर्थावृत्ति) अनुवादक : श्री नेमीचंद पाटनी। पृष्ठसंख्या 98, मूल्य 0.50 पैसे।

**द्रव्यसंग्रह :—**सुबोधिनी टीका-भावार्थ सहित; (तृतीयावृत्ति) श्री नेमिचंद्र सिद्धान्तिदेव विरचित यह पुस्तक जैन तत्त्वज्ञान से भरपूर है। यह जैन पाठशालाओं में पाठ्य-पुस्तक के रूप में प्रचलित है। अनुभवी विद्वान श्री रामजीभाई माणेकचंद दोशी ने अनेक शास्त्राधार देकर विषयों को सरलता से समझाया है।

पृष्ठ संख्या 204, मूल्य 1.20 पैसे, पोस्टेज अलग।

[टाईटिल पृष्ठ 3 पर भी देखें।]

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

# आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

फरवरी : 1972 ☆ माघ : वीर नि० सं० 2498, वर्ष 27 वाँ ☆ अंक : 10

## .....तो सच्चा वैराग्य प्रगट हो!

आत्मा का स्वभाव पूर्णज्ञान-सुख से भरा हुआ है, उसकी जिसे प्रतीति नहीं है और बाहर से सुख लेना चाहता है, वह जीव याचक—भिखारी है। अपने में अनंत सुखनिधि भरी है, उसका तो अज्ञानी उपभोग नहीं करता-जानता भी नहीं और कोई दूसरा मुझे सुख दे, धन दे तो सुख मिले; अच्छा घर हो, वस्त्रादि हों तो मुझे सुख मिले—ऐसा मानकर दीन-पराधीन होता है। निज-निधान को ही अपना जाननेवाला ज्ञानी तो जानता है कि जगत के किसी पदार्थ का अंश भी मुझे नहीं चाहिये, मेरा सुख तो अपने में है। इसप्रकार वह जगत से उदास है। पर से भिन्न ऐसे निज-स्वभाव को पहचाने तो जगत के प्रति सच्ची उदासीनता अथवा सच्चा वैराग्य हो।

# शूरवीर मुनि भगवंतों द्वारा आराधित

# उत्तम आराधना

समाधिमरण में तत्पर क्षपक मुनि को रत्नत्रय की अखंड आराधना में उत्साहित करने तथा उपसर्ग-परिषहादि से रक्षा करने के लिये अन्य मुनिराज-आचार्य उन्हें वीतराग उपदेशरूपी कवच पहिनाते हैं;उसका अद्भुत भावभीना वर्णन भगवती आराधना के 'कवच-अधिकार' में शिवकोटि आचार्यदेव ने किया है। उस भावभीने प्रसंग का वर्णन पढ़ने से ऐसी ऊर्मियाँ जागृत होती हैं मानो आराधक मुनिवरों का समूह दृष्टि समक्ष बैठा हो और वे मुनिराज वैराग्य-उपदेश की अखंड धारा प्रवाहित कर रहे हों... उन आराधक साधु भगवंतों के प्रति हृदय नम्रीभूत हो जाता है, तथा आराधना के प्रति अचिंत्य बहुमान और महिमा जागृत होती है। पूज्य श्री कानजीस्वामी प्रवचन में अनेक बार परमभक्ति सहित इस 'कवच अधिकार' का उल्लेख करके मुनिवरों की शांत अनुभूतिरूप अद्भुत दशा का वर्णन करते हैं, तब मुमुक्षु रोमांचित हो उठते हैं और आराधना तथा आराधक जीवों के प्रति परम भक्ति सहित, आत्मा में भी आराधना की शूरवीरता जाग उठती है। ऐसे कवच अधिकार में 174 गाथाएँ हैं, उनका सार यहाँ दिया जा रहा है। मुमुक्षु जीव उसमें से आत्मिक आराधना की उत्तम प्रेरणा लेकर मुनि भगवंतों की परम भक्ति करो!

—हरि।

# समाधिमरण के अवसर पर आराधना में शूरवीर मुनिवर

## हे जीव! वीर पुरुषों ने जो आराधना की है, वह तू भी उत्साहपूर्वक कर!

समाधिमरण में स्थित मुनिराज को आचार्य उपदेश देते हैं कि—हे क्षपकमुनि! रत्नत्रय में तथा उत्तम क्षमादि धर्म में सावधानीपूर्वक अपने चित्त को लगाओ! क्योंकि इस समय आराधना के उत्सव का महान अवसर है। आचार्य के ऐसे उल्लास वचनों से क्षपक मुनि का चित्त प्रसन्न एवं उज्ज्वल होता है। जिसप्रकार दीर्घकाल से प्यास मनुष्य अमृतजल के पान से तृप्त हो, उसीप्रकार आचार्य के उपदेशरूपी अमृत के पान द्वारा मुनि का चित्त आह्लादित होता है और आचार्य के प्रति नम्रीभूत होकर कहते हैं कि हे भगवान! आपका देखा हुआ सम्यग्ज्ञान मैंने शिरोधार्य किया है; अब जैसी आपकी आज्ञा हो, तदनुसार में प्रवर्तन करूँगा। समाधिमरण में मैं किंचित् भी शिथिलता नहीं आने दूँगा। आपके तथा संघ के प्रसाद से मेरा आत्मा जिसप्रकार इस संसार समुद्र से पार हो, तथा आप गुरुजनों की उज्ज्वल कीर्ति जगत में फैले और मेरे हित के लिये वैयावृत्य में उद्यत सकल संघ का परिश्रम सफल हो—इसप्रकार मैं उज्ज्वल निर्दोष आराधना को ग्रहण करूँगा।

—इसप्रकार उन मुनि ने समाधिमरण हेतु आराधना में अपने परिणाम का उत्साह और परम शूरवीरता गुरु के समक्ष प्रगट की।

अहा, गणधरादि वीर पुरुषों ने जो आराधना की, और विषय-कषाय में डूबे हुए कायर पुरुष मन से जिसका चिंतवन करने में भी समर्थ नहीं; उस आराधना को मैं आपके प्रसाद से आराधूँगा। हे भगवान! आपके उपदेशरूपी ऐसे अमृत का आस्वादन करके कोई कायर पुरुष भी क्षुधा-तृषा या मरणादिक भय को प्राप्त नहीं होते, तो मैं क्यों भयभीत होऊँ?—नहीं होऊँगा; यह मेरा निश्चय है। हे देव! आपके चरणों के अनुग्रहरूप गुण के कारण मेरी आराधना में विघ्न डालने के लिये इन्द्रादिक देव भी समर्थ नहीं हैं; तो फिर यह क्षुधा-तृषा-परिश्रम-वातपित्तादि रोग-इन्द्रियविषय या कषाय मेरे ध्यान में क्या बाधा डालेंगे?—कुछ नहीं कर सकते।

आराधना में शूरवीर ऐसे क्षपक मुनिराज वीरतापूर्वक श्रीगुरु के प्रति कहते हैं कि—कदाचित् मेरुपर्वत अपने स्थान से चलायमान हो जाये, या पृथ्वी उलट जाये, तथापि

आप जैसे गुरु के चरण-प्रसाद के कारण मैं कभी विकृति को प्राप्त नहीं होऊँगा—आराधना से नहीं डिगूँगा।

—इसप्रकार समाधिमरण के लिये जागृत ऐसे क्षपक मुनिराज अपनी शक्ति को छुपाये बिना वीरतापूर्वक कर्म को खिपाते हैं, तथा समाधिमरण करानेवाले निर्यापक आचार्य भी प्रमाद छोड़कर क्षपक मुनि का ज्ञान जागृत रहे, तद्नुसार निरंतर परम धर्म की आराधना का उपदेश देते हैं।

❀ ❀ ❀

समाधिमरण में उत्साहित चित्तवाले वे क्षपकमुनि कदाचित् पापकर्म के उदय से क्षुधा-तृषा या वेदनादि की तीव्र पीड़ा द्वारा व्याकुल हो जायें, परिणाम में शिथिल हो जायें, अन्न-जल का स्मरण करें, तो ऐसे समय में करुणानिधान आचार्य स्वयं किंचित् भी धैर्य छोड़े बिना उन मुनि की 'सारणा' अर्थात् उनके रत्नत्रय की रक्षा का उपाय करते हैं, जिसप्रकार उनके परिणाम उज्ज्वल हों और चेतना जागृत रहे, तद्नुसार उन्हें संबोधन करते हैं।

क्षपक की सावधानी की परीक्षा करने के लिये बारंबार उससे पूछते हैं कि—'हे आत्मकल्याण के अर्थी! तुम कौन हो? तुम्हारा पद क्या है? तुम कहाँ निवास करते हो? हम कौन हैं?'—इसप्रकार पूछने पर उन क्षपकमुनि की चेतना जागृत हो जाती है कि अरे! मैं तो मुनि हूँ, मैंने पंचमहाव्रत सहित संन्यास धारण किया है, मैं अचेत होकर अयोग्य आचरण करूँ, वह मुझे शोभा नहीं देता। यह शिथिल परिणाम छोड़कर रत्नत्रयधर्म के पालन में मुझे सावधान रहना योग्य है। यह आचार्य परम उपकार करनेवाले गुरु हैं, वे मुझे जागृत कर रहे हैं; इसलिये अब सावधान होकर रत्नत्रय के सेवनसहित समाधिमरण करना उचित है।

—इसप्रकार क्षपक की चेतना जागृत देखकर आचार्य भगवान अत्यंत वात्सल्यभाव से उसकी आराधना की रक्षा हेतु 'कवच' करते हैं। कवच अर्थात् बख्तर; जिसप्रकार युद्ध में कवच द्वारा चाहे जैसे प्रहार से रक्षा होती है, उसीप्रकार तीव्र वेदनादि चाहे जैसे परीषहों के बीच भी उल्लसित परिणाम द्वारा साधक के रत्नत्रय की रक्षा हो, उसके लिये आचार्य-महाराज उसे उत्तम वैराग्य से भरपूर आराधना के उपदेशरूपी कवच पहिनाते हैं।

आचार्य के उपदेश द्वारा सावधान होकर वह मुनि विचारता है कि अरे! महान अनर्थ है

कि तीन लोक में दुर्लभ ऐसा साधुपना अंगीकार करके भी मैं असमय ही अन्न-जल की इच्छा करता हूँ! यह संन्यास का समय तो मुझे सर्व आहार-जल के त्याग का अवसर है। सर्व संघ की साक्षी से मैंने चारों प्रकार के आहार का त्याग किया है। अनंतानंत काल में जीव ने कभी संल्लेखनामरण प्राप्त नहीं किया, इससमय श्रीगुरु के प्रसाद से उसकी प्राप्ति का अवसर आया है। अहा, समस्त विषयानुराग छोड़कर परम वीतरागता का यह अवसर है, इसलिये इस समय मुझे परम संयम में जागृत द्वारा आत्मकल्याण में सावधाना रहना चाहिये।—इसप्रकार वह साधु जागृत होकर आराधना में उत्साहित होता है।

अब, कोई क्षपक साधु क्षुधा-तृषा-रोगादि की तीव्र वेदना से असावधान या शिथिल हो जाये, अयोग्य वचन बोले या रुदन करे तो आचार्य स्नेह पूर्ण आनंदकारी वचनों द्वारा उसे सावधान करे; स्वयं शिथिलतारहित होकर क्षपक की सावधान हेतु दृढ़ उपाय करे; उसे कटुवचन न कहे, उसका तिरस्कार न करे, उसे त्रास लगे या वह निरुत्साह हो जाये, ऐसा कुछ न करे; परंतु उसकी परीषह का निवारण करने के लिये, वह जागृत होकर आराधना में उत्साहित हो, ऐसा उपाय आदरपूर्वक करे।

जिसप्रकार रणक्षेत्र में अभेद्य कवच पहिनकर प्रवेश करनेवाला सुभट-योद्धा-शत्रुओं के बाण से नहीं छिदता; उसीप्रकार आराधना में सुभट ऐसे जो साधु संन्यास के अवसर में कर्मोदय के विरुद्ध लड़े जा रहे महासंग्राम में गुरु-उपदेशरूपी अभेद्य कवच धारण करते हैं, वे रोगादिक तीव्र पीड़ारूप शस्त्र द्वारा नहीं छिदते।

क्षपक को आराधना में उत्साहित करने के लिये महाबुद्धिमान गुरु उपदेश-वचन कहते हैं;—कैसे वचन कहते हैं?—स्नेह पूर्ण, कर्णप्रिय एवं आनंदकारी वचन कहते हैं कि जिन्हें सुनते ही सर्व दु:खों का विस्मरण हो जाये और सीधे हृदय में उतर जायें—'सुंदर चारित्र धारक हे मुनि! चारित्र में विघ्न करनेवाली इस अल्प या महान व्याधि की प्रबल वेदना को तुम दीनतारहित तथा मोहिरहित होकर धैर्यपूर्वक जीतो। समस्त उपसर्ग-परीषह को मन-वचन-काया से जीतकर मरणसमय में चारों प्रकार की सम्यक् आराधना के आराधक रहो।

रोगादिक व्याधि अशुभकर्म के उदय से आती हैं; इस समय दीन होकर वर्तोगे या धैर्य छोड़ दोगे तो उससे कहीं तुम्हारा उपद्रव दूर हो जानेवाला नहीं है। अपने ही परिणामों द्वारा

उत्पन्न किये अशुभकर्म को दूर करने के लिये कोई देव भी समर्थ नहीं है; इसलिये रागादि प्रतिकूलता आने पर उसे कायरता छोड़कर, महान धैर्यपूर्वक, क्लेश बिना भोगना ही श्रेष्ठ है, जिससे आराधना में भंग न पड़े और पूर्वकर्म की निर्जरा हो तथा नवीन कर्म न बँधे।

हे चारित्रधारी! चार प्रकार के संघ के समक्ष तुमने ऐसी प्रतिज्ञा ली थी कि—'मैं आराधना धारण करता हूँ'—उसे क्या तुम भूल गये हो? अपनी उस प्रतिज्ञा को तुम याद करो! क्या युद्ध का आह्वान करनेवाला शूरवीर शत्रु को देखकर भयभीत होकर भागता होगा?—कदापि नहीं। उसीप्रकार सर्व संघ के समक्ष जिन्होंने आराधना की दृढ़ प्रतिज्ञा की है—ऐसे उत्तम साधु परिषहरूपी शत्रु को देखकर मुनिधर्म से क्या चलायमान होंगे? विषाद क्यों करेंगे? नहीं करेंगे। मरण आये, तो भले आये परंतु शूरवीर साधु आपत्तियों की अत्यंत तीव्र वेदना को भी समभावपूर्वक सहन करता है, परिणामों को विकृत नहीं होने देते; कायरता या दीनता नहीं करते।

अहा, जिनेन्द्र भगवान द्वारा आदरणीय ऐसी आराधना को मैंने धारण किया है, अनंतभव में दुर्लभ ऐसा संयम मुझे वीतरागी गुरुओं के प्रसाद से प्राप्त हुआ है; तो अब जो रोगादि जनित उपसर्ग आता है, उसमें मरण हो तो भले हो, परंतु आराधना को छोड़ना योग्य नहीं है। एक बार मरना तो है ही, तो फिर गुरु के प्रताप से व्रतसहित मरण हो, उसके समान अन्य कोई कल्याण नहीं है। अरे! ऐसे अवसर में कायर होकर, व्रतादि में शिथिल होकर, विलाप करना या तुच्छ कार्य द्वारा रोगादि के इलाज की इच्छा करना, वह तो लज्जा और दुर्गति के दु:खों का कारण है;—तो ऐसा कौन करे? एक जीवन के लिये मुनिधर्म को या संघ को कलंक कौन लगाये? चाहे जैसी प्रतिकूलता आये परंतु शूरवीर पुरुष आराधना से विमुख नहीं होते, दीनता या कायरता नहीं करते।

जैसे—कोई पुरुष चारों ओर से अग्नि द्वारा दग्ध होते हुए भी—मानों पानी के बीच खड़ा हो—ऐसा शांत-निराकुल रहता है, उसीप्रकार धीरवीर साधुजन अग्नि के बीच भी निराकुलरूप से आराधना में स्थिर रहते हैं। अरे, स्वर्गादि परलोक संबंधी इन्द्रियसुख में लुब्ध अज्ञानी भी इन्द्रियसुख की अभिलाषा से संसारवर्द्धक लेश्यापूर्वक तीव्र वेदना सहन करते हैं, तो जिन्होंने समस्त संसार को अत्यंत दु:खरूप जाना है और जो संसारदु:ख से छूटकर मोक्षसुख

को साधने में तत्पर हैं, ऐसे जैन मुनि क्या निराकुलरूप से वेदना में धैर्य धारण नहीं करेंगे? अवश्य करेंगे। चाहे जैसा रोग आये, तथापि उत्तम पुरुष अयोग्य औषधि (कन्दमूल आदि) का भक्षण नहीं करते। छोटी-बड़ी आपत्ति आने पर जो विषाद करता है, उसे वीर पुरुष कायर कहते हैं। धैर्यवान सत्पुरुषों का तो ऐसा स्वभाव है कि महान आपत्ति आने पर भी उनके परिणाम सागर की भाँति अक्षोभ तथा मेरु के समान अचल रहते हैं।

समस्त परिग्रह छोड़कर जिन्होंने अपने आत्मा को आत्मस्वरूप में ही स्थिर किया है और श्रुतज्ञान जिनका सहचर है—ऐसे उत्तम साधु को शेर फाड़ रहा हो, तथापि श्रेष्ठ ऐसे रत्नत्रय की साधना करते हैं, कायर बनकर शिथिल नहीं होते।

## [ ऐसे धीरवीर मुनिराजों के उदाहरण देते हैं:— ]

- स्यालनी और उसके बच्चों द्वारा तीन रातों तक भक्षण किये जाने से जिनके शरीर में घोर वेदना उत्पन्न हुई, ऐसे वे नवदीक्षित सुकुमाल मुनि ध्यान द्वारा आराधना को प्राप्त हुए।
- भगवान सुकोशल मुनि को उनकी माता ने शेरनी होकर उनका भक्षण किया, तथापि वे उत्तम अर्थ को (रत्नत्रय के निर्वाह को) प्राप्त हुए।
- चलनी की भाँति कीलों द्वारा शरीर छिदने पर भी भगवान गजकुमार मुनि उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए।
- हे मुनि! देखो, सनत्कुमार नामक महा मुनि ने सैकड़ों वर्ष तक खुजली-बुखार-तीव्र क्षुधा-तृषा, वमन, नेत्रपीड़ा तथा उदरपीड़ा आदि अनेक रोगजनित दुःख भोगने पर भी संक्लेश बिना सम्यक्रूप से सहन करते हुए धैर्यपूर्वक रत्नत्रयधर्म का पालन किया।
- एणिक पुत्र नामक साधु ने गंगा नदी के प्रवाह में बहते हुए भी निर्मोहरूप से चार आराधना प्राप्त करके समाधिमरण किया, परंतु कायरता नहीं की। इसलिये हे कल्याण के अर्थी साधु! तुम्हें भी धैर्य धारण करके आत्महित में सावधान रहना उचित है।
- भद्रबाहु मुनिराज घोरतर क्षुधावेदना से पीड़ित होने पर भी संक्लेशरहित बुद्धि का अवलंबन करते हुए, अल्पाहार नाम के तप को धारण करके उत्तम स्थान को प्राप्त हुए परंतु भोजन की इच्छा नहीं की।

❀ कोशाम्बी नगरी में ललितघटादि बत्तीस प्रसिद्ध महामुनि नदी के प्रवाह में डूबने पर भी निर्मोहरूप से प्रायोपगमन संन्यास को धारण करके आराधना को प्राप्त हुए।

❀ चंपानगरी के बाहर गंगा के किनारे धर्मघोष नामक महामुनि एक मास के उपवास धारण करके असह्य तृषा की वेदना होने पर भी संक्लेशरहित उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए; आराधनासहित समाधिमरण किया; तृषा की वेदना से पानी की इच्छा नहीं की; संयम से नहीं डिगे, परंतु धैर्य धारण करके आत्मकल्याण किया।

❀ पूर्वजन्म के बैरी देव ने विक्रिया द्वारा घोर शीतवेदना की, तथापि श्रीदत्त मुनि संक्लेशक बिना उत्तम स्थान को प्राप्त हुए।

❀ वृषभसेन नामक मुनि उष्ण वायु, उष्ण शिला-तल तथा सूर्य का उष्ण आतप संक्लेशरहित सहन करके उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए।

❀ रोहेडग नगरी में अग्निपुत्र का क्रोच नामक शत्रु ने शक्ति-आयुष द्वारा घात कर दिया, तथापि उस वेदना को सहन करके वे उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए।

❀ काकंदी नगरी में चंडवेग नामक शत्रु ने अभयघोष मुनि के सर्व अंग छेद डाले; वह घोर वेदना पाकर भी वे उत्तम अर्थ ऐसे रत्नत्रय को प्राप्त हुए।

❀ विद्युत्चर मुनि डांस-मच्छर द्वारा भक्षण की अति घोर वेदना को संक्लेशरहित सहन करके उत्तम अर्थरूप आत्मकल्याण को प्राप्त हुए।

❀ हस्तिनापुर के गुरुदत्त मुनि द्रोणमति (द्रोणिगिरि) पर्वत पर, हंडी के अनाज की भाँति दग्ध होने पर भी उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए।

❀ चिलातपुत्र नामक मुनि को किसी पूर्वभव के शत्रु ने तीक्ष्ण आयुध द्वारा घाव कर दिया; उस घाव में बड़े-बड़े कीड़े पड़ गये और उन कीड़ों से उनका शरीर चलनी की भाँति विंध गया, तथापि संक्लेशरहित समभाव से वेदना सहन करके वे उत्तमार्थ को प्राप्त हुए।

❀ यमुनावक्र के तीक्ष्ण बाणों द्वारा जिनका शरीर छिद गया है, ऐसे दंडमुनिराज घोर वेदना को भी समभाव से सहन करके उत्तमअर्थरूप आराधना को प्राप्त हुए।

❀ कुम्भकार नगरी में कोल्हू में पिलने पर भी अभिनंदनादिक पाँच सौ मुनि समभावपूर्वक आराधना को प्राप्त हुए।

❀ सुबन्धु नामक शत्रु ने गौशाला में आग लगा दी; उसमें जलने पर भी चाणक्य मुनिराज प्रायोपगमन संन्यास धारण करके संक्लेशरहित उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए।

❀ कुलालग्राम के उद्यान में रिष्टामच्य नामक शत्रु ने मुनियों के निवासस्थान को आग लगा दी; उसमें दग्ध होने पर भी मुनियों की सभासहित वृषभसेन मुनिराज ने आराधना प्राप्त की।

—इसप्रकार उपसर्गादि वेदना प्रसंग पर भी आराधना में अडिग रहनेवाले अनेक शूरवीर मुनिवरों का स्मरण कराके, आचार्य महाराज उन क्षपक मुनि को उत्साहित करते हुए कहते हैं कि हे मुनि! इतने-इतने मुनिवरों ने घोर उपसर्गों की तीव्रवेदना सहन की; वे असहाय एकाकी थे; कोई इलाज करनेवाला या वैयावृत्य करनेवाला भी नहीं था; तथापि कायरता छोड़कर वीरतापूर्वक परम धैर्य धारण करके वे उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए, आराधना से नहीं डिगे; तो फिर तुम्हारी सहायता में तो यह सब मुनि हैं, सब संघ तुम्हारे इलाज और वैयावृत्य में तत्पर है, तो तुम आराधना में उत्साहित क्यों नहीं होते?—कायरता छोड़ो, और वीरतापूर्वक आराधना में उद्यम बनो... यह आराधना का अवसर है।

अहा, अनेक घोरातिघोर उपसर्ग आने पर भी उन मुनियों ने एकाकी रूप से उन्हें सहन किया परंतु साम्यभाव को नहीं छोड़ा; प्राणरहित हुए परंतु आराधना में शिथिल नहीं हुए और आत्मकल्याण किया। तो हे मुनि! तुम्हें तो आचार्यादि महान ज्ञानी दयावान, धैर्यवान परमहितोपदेश सुना रहे हैं, शरीर की वैयावृत्य करने में सावधान हैं और योग्य इलाज करने में तत्पर सर्वसंघ सहायक है; तथा ऐसा कोई तीव्र उपसर्ग भी नहीं आया है; तो ऐसे अवसर पर उत्तम आराधना में तुम क्यों शिथिल होते हो? इस समय तो आत्मा को उत्साहित करना योग्य है; इसलिये कायरता छोड़ो और धीरता अंगीकार करो।

हे मुनि! सर्व संघ के बीच जिनेन्द्रदेव के अमृतरूप मधुर वचन तुम्हारे कानों में पड़े; उन्हें सुनकर अब तुम उत्तम अर्थरूप चार आराधनाओं का आराधन करने में समर्थ हो। जिनेन्द्र भगवान के वचनों का श्रवण तो अमृत अर्थात् मोक्ष के आत्मिकसुख का साक्षात् अनुभव कराता है और

मोक्ष प्रदान करता है; इसलिये जिनवचन अमृतसमान मिष्ट हैं। ऐसे जिनवचन जिसके कर्ण द्वारा हृदय में प्रविष्ट हों, वह पुरुष चारों आराधनारूप से परिणमित होने में असमर्थ क्यों होगा ?

अरे क्षपक! यहाँ तुम्हें ऐसा क्या दु:ख आ पड़ा है कि जिससे शिथिल हुए जा रहे हो ? इस संसार में परिभ्रमण करते हुए तुमने नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति तथा देवगति में जो दु:ख भोगे, उन्हें याद करके जरा विचार तो करो! ऐसा कोई दु:ख शेष नहीं रहा कि जो तुमने संसार में न भोगा हो! अनंत बार अग्नि में जले, अनंत बार पानी में डूब गये, अनंत बार पहाड़ से गिरकर मरे, शस्त्रों से छिद गये, अनंत बार कोल्हू में पिले, अनंत बार सिंह द्वारा खाये गये, चक्की में पीसे गये... क्या यह सब तुम भूल गये ? अनंत बार भूख की तीव्र वेदना से प्राण छोड़े, अनंत बार प्यास से मरे; ठण्ड, गर्मी, वर्षा, आँधी, विष भक्षण से एवं तीव्र रोगों की वेदना से अनंत बार मरण किये; अपनी स्त्री, पुत्र, मित्रादि बंधुजनों द्वारा भी अनंत बार मारे गये; तो अब समाधि के इस अवसर में मृत्यु से या वेदना से भयभीत होकर रत्नत्रय को बिगाड़ना उचित नहीं है। तीव्र दु:खों में अनंत काल बिताया, तो वर्तमान में यह थोड़ी सी वेदना आने पर परम धर्म में शिथिल होना उचित नहीं है। इसलिये अब उत्साहित होकर वीतरागभाव से आराधना में शूरवीर बनो!

—ऐसे उपदेशरूपी कवच द्वारा क्षपक मुनि को आराधना में जागृत करते हैं। क्षपक मुनि भी सावधान होकर, वेदना को भूलकर, चैतन्य के वीतरागी शांतरस के वेदन में तत्पर होते हैं और उत्तम आराधना में अचल रहते हैं।

हे मुनि! नरक में परवशरूप से असह्य शीत-उष्णता असंख्य वर्षों तक सहन की, तो इस मनुष्य-जन्म में धर्म के धारक जीव को क्या यहाँ की शीत-उष्णता का स्ववशरूप से सहन करना योग्य नहीं है ? यह तो समभाव से परिषह सहन करने का अवसर है; इसलिये परमधैर्य धारण करो! धैर्यपूर्वक सहन नहीं किया और आकुलता की तो भी कर्म नहीं छोडेंगे; इसलिये अल्पकाल की अल्पवेदना से कायर होकर धर्म को न बिगाड़ो। नरक की वेदनाओं के सामने यह वेदना किस गिनती में है ?—जिससे तुम कायर बन रहे हो ? अरे, नरक में जब ताँबे का धधकता हुआ लाल रस तुम्हारा मुँह फाड़कर पिलाया गया, उस समय की वेदना का विचार तो करो! उस वेदना के निकट यह प्यास की वेदना किस गितनी में है ?—जो तुम पानी को याद

करते हो ? इसके बदले अंतर में निर्विकल्प चैतन्यरस का स्मरण करो... चैतन्य के आनंदरस का पान करके अपनी तृषा शांत करो। अनंत सागर भर जायें, इतना पानी पीने पर भी जो तृषा शांत न हुई, उस तृषा को चैतन्यरस के उपशांत पेय द्वारा तृप्त करो !

रे जीव ! नरकगति की भाँति चारों गतियों में शरीर संबंधी, मन संबंधी, मान-अपमान तथा इष्ट-वियोग अनिष्ट-संयोग आदि संबंधी जो तीव्र दुःख अनंत बार भोगे हैं, उनका चिंतन करो। यहाँ संन्यास-समाधिमरण के अवसर में उत्पन्न वेदना का तो क्या दुःख है ? इस समय तो समभाव द्वारा सहन करके सर्व दुःखों का अभाव करने का अवसर है; इसलिये कायरता छोड़ो और परम धैर्यपूर्वक परीषहों को जीतकर सकल कल्याण को प्राप्त करो ! यह कर्म को जीतने का अवसर है, इस समय अचेत रहना योग्य नहीं है। हे मुनिवर ! पूर्वकाल में चार गतियों के परिभ्रमण में जो अनंत दुःख इस जीव ने भोगे हैं, उसके अनंतवे भाग का दुःख भी वर्तमान में तुम्हें नहीं है, तो फिर कायर होकर तुम धर्म को मलिन क्यों करते हो ? पूर्व असंख्यातकाल तक निरंतर दुःख सहन किये तो अब इस समाधिमरण के अवसर पर अल्पकालीन रोगादि जनित दुःख क्यों सहन नहीं करते ? धैर्यपर्वूक वेदना सहन करके आत्मा का कल्याण करो ! पूर्वकाल में तो परवशरूप से चार गतियों की वेदना सहन की, तो इस अवसर में समभाव से वेदना सहन करने का धर्म जानकर आत्मवशरूप से उसे सहन करने में क्यों समर्थ नहीं होते ?

हे मुनि ! सर्व समुद्रों का जल भी जिसे उपशांत न कर सके, ऐसी तीव्र तृषा का वेदन तुमने अनंत बार किया; तो इस समय निर्विकल्प शांतचैतन्यरस पीने के अवसर पर उस जल को क्यों याद करते हो ? आत्मा को स्वानुभूति के आनंदरस में निमग्न करके तृप्त करो !

अरे, समस्त पुद्गलकाय द्वारा जो क्षुधा शांत न हो, ऐसी तीव्र क्षुधावेदना तुमने संसार में अनंत बार सहन की है, तो इस समाधि के अवसर पर उस पौद्गलिक आहार को क्यों याद करते हो ? तुम तो आनंदभोजी हो, अतीन्द्रिय आनंद के भोजन द्वारा आत्मा को तृप्त करो ! इसप्रकार घोर तृषा-क्षुधा को स्ववशरूप से सहन करो, जिससे पुनः संसार की वेदना कभी प्राप्त न हो।

—इसप्रकार धर्मकथा के श्रवणरूप अमृतपान द्वारा, गुरु के उपदेशरूप भोजन द्वारा तथा ध्यानरूप औषधि द्वारा जीव तीव्र वेदना को भी सहन करने में समर्थ होता है।

हे मुनि ! असाताकर्म का प्रबल उदय आने पर तुम भयसहित होओ या भयरहित होओ,

इलाज करो या न करो, परंतु वेदना से नहीं छूट सकते। पापकर्म के उदय में अत्यंत शक्तिशाली औषधि भी वेदना का उपशम नहीं कर सकती; इसलिये उसके वेदन में ऐसा समभाव रखो कि जिससे नवीन कर्म का बंध न हो और पूर्वकर्म की निर्जरा हो जाये।

मोक्षाभिलाषी संयमीजनों का मरण हो तो भले हो, परंतु वेदना का उपशमन करने के लिये अयोग्य द्रव्य का सेवन करना इष्ट नहीं है। मरण से तो एक जन्म का ही नाश होता है परंतु असंयम से तो अनेक भव नष्ट हो जाते हैं; इसलिये एक जन्म के थोड़े-से जीवन के लिये संयम का नाश करना उचित नहीं है। असाता का उदय आया, उसे कौन रोक सकता है?—ऐसा जानकर हे कल्याणार्थी जनो! अशुभकर्म की उदीरणा होने से दु:ख न करो! दु:खी होने से कहीं उदय तो नहीं मिटेगा परंतु पुन: असाताकर्म का बंध होगा। विषाद-क्लेश या विलाप करने से तो कहीं वेदना का उपशमन नहीं होता, कम भी नहीं होती; संक्लेश करने से वेदना में तो अंतर नहीं पड़ता, तथा अन्य भी कोई लाभ नहीं होता, मात्र आर्तध्यान होता है और दुष्कर्म बँधते हैं।

जिसप्रकार आकाश को मुक्का मारना निरर्थक है; और तेल के लिये रेत को पेलना निरर्थक है; उसीप्रकार अशुभकर्म के उदय में विलाप या दीनता करना भी निरर्थक है; उससे दु:ख नहीं मिटता किंतु उलटा बढ़ता है और भविष्य में दु:ख के कारणरूप तीव्रकर्म बँधते हैं। जिसप्रकार न्यायवान पुरुष स्वयं लिया हुआ ऋण चुकाने में दु:खी नहीं होता, परंतु ऋण से मुक्त होने पर हर्ष मानता है; उसीप्रकार पूर्वकाल में स्वयं उपार्जित कर्म उदय में आने पर न्यायमार्गी ज्ञानीजन दु:खी नहीं होते; समभावपूर्वक सहन करके कर्म का ऋण चुकाने में वे आनंद मानते हैं। यह वेदना किसी और की दी हुई नहीं है, किंतु हमारे ही पूर्वकर्म का फल है, ऐसा जानकर समभाव रखो, दु:खी मत होओ!

अरे मुनि! पूर्वकाल में अन्य किसी को ऐसा दु:ख न आया हो और अकेले तुम्हें ही आया हो—ऐसा तो नहीं है; दु:ख तो संसार में सभी जीवों को आता है। पूर्वकर्म के उदय से दु:ख आने पर भी समभाव रखकर अनेक जीव मोक्ष में चले गये; इसलिये दु:ख में समभाव रखना योग्य है। कर्म से भिन्न अपने स्वरूप का स्मरण करके धैर्य धारण करने से वह दु:ख दूर हो जाता है और आराधना निर्विघ्न रहती है।

अरिहंत-सिद्ध भगवंत तथा उस क्षेत्र के निवासी देव और सर्व संघ की साक्षीपूर्वक किया हुआ जो प्रत्याख्यान, उसका भंग करने की अपेक्षा तो मरण श्रेष्ठ है; क्योंकि व्रत-भंग से

तो लोक में निंदा होती है, मार्ग दूषित होता है, धर्म का अपवाद होता है और परलोक में भी जीव दीर्घकाल तक दु:खी होता है; इसलिये पंच परमेष्ठी की साक्षीपूर्वक लिये हुए संल्लेखना व्रत को हे मुनि! भंग न करो! भले ही देह छूट जाये, परंतु ऐसे दुर्लभ रत्नत्रय को प्राप्त करके अब उसे दूषित न करो।

इस समाधि के अवसर पर क्षुधा से पीड़ित होकर तुम आहार की वांछा करते हो, किंतु अरे मुनि! जहाँ आत्मिक सुखरस का स्वाद है, वहाँ आहारादि से विरक्ति हो जाती है। रसनाइन्द्रिय की लालसा से आहार में गृद्धता करके अभक्ष्य आहार करते हुए अनंतकाल से जीव ने नरकादि चारगतियों में महादु:ख प्राप्त किया, और तुम्हें इस समाधि के अवसर में अब भी आहार की लालसा नहीं छूटती, तो तुम संसार में दु:खी होओगे। तुम मानते हो कि—'आहार द्वारा क्षुधा की तृष्णा मिटाकर मैं तृप्त होऊँगा'—परंतु अनंतकाल से आहार करने पर भी जीव को तृप्ति नहीं हुई। चक्रवर्ती के भोगोपभोग से, कल्पवृक्ष के दिव्य आहार से या असंख्यात वर्षों तक देवलोक के दिव्य अमृत के आहार से भी जिसे तृप्ति नहीं हुई, उसे इस तुच्छ अन्नादिक के भोजन से तृप्ति क्यों होगी? जिसप्रकार अग्नि ईंधन द्वारा कभी उपशांत नहीं होती; उसीप्रकार भोजन की लालसा से तृप्त जीव आहार द्वारा कभी तृप्त नहीं होता; इसलिये धैर्य धारण करके आहार की वांछा छोड़ो और अंतर में उपयोग लगाकर अतीन्द्रिय ज्ञान-आनंद का स्वाधीन भोजन करो... उसके अनुभव से ही जीव को परम तृप्ति होगी।

जिसको तृषा समुद्र के जल से भी शांत न हुई, उसकी तृषा पानी की एक बूँद से कैसे मिटेगी? अतीत काल में आहार के बहाने समस्त जाति के पुद्गलों का जीव ने भक्षण किया है, तथापि क्षुधा न मिटी, तो अब जो कंठगत प्राण हैं, वे किंचित् आहार से कैसे तृप्त होंगे? इसलिये इस पौद्गलिक आहार की अभिलाषा छोड़कर चैतन्य के संतोषरूप परम अमृत का आस्वादन करो। जो आहार अनंतबार भोगा जा चुका है, उसका अब क्या आश्चर्य! पूर्वकाल में अनेकबार न भोगे हुए की अभिलाषा हो, वह तो ठीक, परंतु ऐसा तो कोई आहार नहीं है जो पूर्वकाल में अनेकबार न भोगा जा चुका हो। आहार की अति गृद्धतावाला जीव अनेक प्रकार से आरंभ करता है और आकुलता से दु:खी होता है। अरे, ऐसे कौन मुनि होंगे जो आहार के अल्पकालिक स्वाद के लिये चैतन्यस्वाद के दीर्घकालीन महान सुख से चलित हों!

हे मुनि! संसार में जितने भी शरीर-संबंधी या मन-संबंधी दु:ख इस जीव ने अनंत बार

प्राप्त किये, वे सब दु:ख शरीर में ममत्वरूप दोष के कारण ही पाये हैं। संसार में जिनते दु:ख हैं वे सब शरीर-संबंधी ममत्व के कारण ही जीव भोगता है। अब भी यदि शरीर में ममत्वबुद्धि करोगे तो संसार-भ्रमण का महा दु:ख पाओगे। संसार में मरणसमान भय नहीं है और जन्मसमान दु:ख नहीं है; इसलिये जन्म-मरण से भरे हुए शरीर का ममत्व छोड़ो! समाधिमरण के लिये शरीर की ममता छोड़कर चैतन्य के चिंतन में चित्त को लगाओ। 'शरीर अन्य है, जीव अन्य है'—ऐसे निश्चयरूप बुद्धिवाले हे मुनि! अब तुम दु:ख-भय-क्लेश करानेवाले इस शरीर का ममत्व न करो। शरीर पुद्गलमय है, आत्मा तो ज्ञाता है; शरीर मूर्त है, आत्मा अमूर्त है; शरीर संयोगी-विनाशीक है, आत्मा असंयोगी-अविनाशी है; शरीर अचेतन है, आत्मा चेतन है—इसप्रकार दोनों को प्रगटरूप से अत्यंत भिन्न जानकर शरीर से भिन्न आत्मा का अनुभव करते हुए तुम शरीर का ममत्व छोड़ो। शरीर की ममता महान दु:ख उत्पन्न करनेवाली है, इसलिये ज्ञानभावना प्रगट करके शरीर की ममता करना योग्य नहीं है। हे मुनिराज! रोगादि समस्त उपसर्ग परिषह को नि:संगरूप से (एकत्वस्वभाव में तत्पररूप से) सहते हुए तुम संक्लेशरहित होकर मोह को जीत लो। जिसप्रकार कोई रत्नों से भरा हुआ जहाज पूरे समुद्र को पार करके, किनारे आकर प्रमाद के कारण डूब जाये, उसीप्रकार संसार-समुद्र के किनारे आयी हुई रत्नत्रय से भरी हुई साधुत्वरूपी अपनी नौका की हे मुनि! संक्लेश परिणाम द्वारा पुन: भवसमुद्र में डूबने नहीं देना। तीन लोक में सारभूत एवं उत्तम मोक्षसुख प्रदान करनेवाले इस दुर्लभ साधुपने को आहार के अल्प सुख हेतु नष्ट न करो! अल्पकाल जीवन शेष है, इसलिये आहारादि की वांछा छोड़कर वीतरागता से परम संयम की भावना में दृढ़ रहो!

अहा, उपसर्ग और परिषह प्राप्त होने पर भी जिनका धैर्य नहीं छूटा, ऐसे धीर-वीर पुरुषों द्वारा उपदेशित एवं संत पुरुषों द्वारा सेवित-ऐसा यह महापवित्र रत्नत्रयमार्ग, उस मार्ग को प्राप्त करे धन्यपुरुष आहार-शरीरादि की वांछा से रहित होते हुए समाधि प्राप्त करके शुद्ध होते हैं—आराधना द्वारा उनके संसार का अंत होता है। इसलिये हे कल्याणार्थी मुनिराज! इस कलेवर-कुटीर को अत्यंत त्यागने योग्य जानो! और यह शरीर-कलेवर हमारा नहीं है—इसप्रकार ममतारहित होकर रत्नत्रय में स्थिर रहो। कर्म के फल में उदासीन रहकर वेदना को दु:खरहित सहन करना योग्य है।

इसप्रकार निर्यापक आचार्य के वीतरागपूर्ण वीतरागी उपदेश द्वारा जिनका भेदविज्ञान

जागृत हुआ है, ऐसे वे क्षपकमुनि संक्लेश से निवृत्त होते हैं, रत्नत्रय में उत्साहित होते हैं और जिसप्रकार अन्य शरीर में उत्पन्न दु:ख का वेदन अपने को नहीं होता, उसीप्रकार इस शरीर में उत्पन्न दु:ख को भी अपने से भिन्न देखते हैं; भिन्न चैतन्य की भावना से स्वयं अपनी आराधना में अचल रहते हैं और कवच धारण किये हुए योद्धा की भाँति शूरवीरतापूर्वक विचार करते हैं कि—अहा, मेरी धीरता देखने तथा मुझमें आराधना का उत्साह जागृत करने के लिये यह महान ऋद्धिवान वीतराग मुनि मेरे पास आये हैं; अब उनके समक्ष प्राण छूटें तो भले छूटें, परंतु धैर्य छोड़कर व्रतभंग द्वारा मैं धर्म को लज्जित नहीं करूँगा। इसप्रकार उत्तम पुरुषों के संसर्ग से कायर भी धैर्यरूप कवच धारण करके कर्म से युद्ध करने के लिये तैयार हो जाता है। अभेद्य कवच समान इस वीतरागी उपदेश को हृदय में धारण करनेवाला पुरुष कर्मशत्रु को जीत लेता है।—इसप्रकार वीतरागी वचनरूपी कवचसहित हुए क्षपकमुनि परिषहरूपी शत्रु से अभेद्य रहकर आत्मध्यान करने में समर्थ होते हैं।

❀ ❀ ❀

इसप्रकार वीतरागी गुरु द्वारा पहिनाये गये कवच—बख्तर के प्रभाव से वे क्षपकमुनि क्षुधा-तृषा-रोगवेदना आदि परिषहों को संक्लेश के बिना परम समताभाव से सहन करते हैं और शरीर में-क्षेत्र में-सकलसंघ में-वैयावृत्य करनेवालों में तथा समस्त क्षेत्र-कालादि में राग-द्वेषरहित वर्तते हुए, कहीं भी परिणाम को बाँधे बिना परम समताभाव को प्राप्त करते हैं। संसार में जितनी वस्तुएँ ग्रहण की जाती हैं, वे सब मुझसे अन्य हैं, मेरा कुछ नहीं है;—इसप्रकार सर्वत्र निर्ममत्व भाव द्वारा वह जीव समभाव को प्राप्त होता है। कवच द्वारा धीरता धारण करनेवाले वे साधु किन्हीं संयोगों में रति-अरति नहीं करते; इष्ट वस्तु के संयोग में उत्सुकता या हर्ष और अनिष्ट वस्तु के संयोग में दीनता या विषाद नहीं करते। मित्र-स्वजन-शिष्य-साधर्मी सबके प्रति राग-द्वेष छोड़ते हैं। वीतरागी कवच द्वारा जिनका मन आराधना में दृढ़ हुआ है, ऐसे वे साधु स्वर्गादि के भोग की भी वांछा नहीं करते। रत्नत्रयमार्ग की विराधना के बिना दृढ़ता से आराधना में तत्पर रहते हैं; जीवन-मरण या मान-अपमान में वे समभावी रहते हैं। इस जगत में जितने इन्द्रियविषय हैं, वे तो सब पुद्गल की पर्यायें हैं और ज्ञानानंदस्वरूप ऐसे मुझसे तो वे भिन्न हैं, तो फिर मैं किसमें राग-द्वेष करूँ? इसप्रकार सर्वत्र राग-द्वेषरहित होकर वे साधु उत्तमार्थ ऐसी आराधना में वर्तते हैं। मरणपर्यंत चाहे जैसी असाता

हो, तथापि निर्मोहरूप से वे समभाव में वर्तते हैं। इसप्रकार आचार्य समक्ष जिन्होंने उत्तम प्रकार से आत्मा को भाया है, ऐसे वे क्षपकमुनि खेदरहित शूरवीररूप से परम रत्नत्रय में आरूढ़ होकर चैतन्य में ही चित्त की एकाग्रतापूर्वक समाधिमरण करते हैं।

❀ नमस्कार हो ऐसे आराधक मुनि भगवंतों को! ❀

❀ ❀ ❀

**अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।**
**तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः॥**

रागादि दोषों की उत्पत्ति नहीं होना, सो अहिंसा है और रागादि की उत्पत्ति होना हिंसा है, यही जिनागम का सार है।

इसका तात्पर्य यह कि जैनधर्म में राग-द्वेष ही आत्मा की हिंसा है। अतः रागादि अधर्म है और वीतरागता ही धर्म है। अतः सूक्ष्म से सूक्ष्म राग भी आत्मा को छोड़ना पड़ेगा, तभी वह वीतरागी बनेगा। प्रथम श्रद्धा में विपरीत अभिप्राय और सर्व प्रकार के रागादि का सर्वथा त्याग और भूतार्थ का ग्रहण होना चाहिये। श्रद्धान में शुभराग को भला माने—मोक्षमार्ग माने तो मिथ्यादृष्टि ही होता है। यद्यपि ज्ञानी (सम्यग्दृष्टि) जीव को भी अपनी भूमिकानुसार राग आता है, किंतु उसकी दृष्टि में सभी शुभ (पुण्य) अशुभ (पाप) रूप राग हेय ही है। राग आता इसलिये है कि उतनी चारित्र की कमजोरी है और वह कमजोरी इसलिये है क्योंकि अभी स्वरूप का निर्णय और श्रद्धान करके भी इतनी विशेष स्वरूप की स्थिरता नहीं है, जिससे संपूर्ण राग का त्याग कर सके।

अतः यथार्थ में धर्म वीतरागता ही है। किंतु कहीं-कहीं शुभराग (पुण्य) को रूढ़ि से-व्यवहार से धर्म कह दिया है। अज्ञानी जीव को निश्चय और व्यवहार का यथार्थ ज्ञान न होने से उसको वास्तविक धर्म मान लेता है। इसी कारण उसके अनंत संसार का नाश नहीं हो पाता और वास्तविक धर्म का प्रारंभ भी उसे नहीं होता। वह वास्तविक धर्म से अनभिज्ञ ही रहता है।

# आनंद के पिपासु जीवों के लिये संतों ने परम आनंद की प्याऊ खोली है।

**[ प्रभो! जगत में तो कहीं मैंने सुख नहीं देखा, अब मुझे वह परमतत्त्व बतलाइये जिससे मुझे सुख की प्राप्ति हो! ]**

शास्त्र के प्रारंभ में पंचपरमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार करके, प्रभाकरभट्ट नाम का पात्र शिष्य विनयपूर्वक श्रीगुरु के पास याचना करता है कि हे प्रभो! मुझे शुद्धात्मा की प्राप्ति हो और चैतन्यनिधान मिले—ऐसा उत्तम परमात्मतत्त्व का उपदेश दीजिये। जगत में तो मैंने कहीं सुख नहीं देखा, मुझे अपने परमतत्त्व में से ही सुख की प्राप्ति होगी—ऐसे विश्वासपूर्वक शिष्य कहता है कि—हे प्रभो! अनुग्रहपूर्वक ऐसे किसी परमतत्त्व का उपदेश दो कि जिसे जानने से मुझे अपने चैतन्यसुख की प्राप्ति हो।

जिसप्रकार नूतनवर्ष के प्रारंभ में महापुरुष-धर्मात्मा का आशीर्वाद लेते हैं, उसीप्रकार यहाँ शिष्य अपने आत्मा में आनंद का नूतन वर्ष प्रारंभ करने के लिये श्रीगुरु के निकट विनयपूर्वक आशीर्वाद माँगता है और प्रार्थना करता है कि—हे स्वामी! प्रसन्न होकर मुझे परमतत्त्व बतलाइये .....कि जिस परमतत्त्व को समझने से मुझे सुख का अनुभव हो! अब तक संसार में भटकते हुए मैंने अनेकानेक दुःख सहन किये हैं, सुख तो कहीं दिखाई नहीं दिया... परमात्मतत्त्व को न जानने से ही मैं दुःखी हुआ हूँ; हे स्वामी! अब कृपा करके आप वह परमात्मतत्त्व बतलाओ कि जिसे जानकर मैं सिद्धसुख प्राप्त करूँ और इस संसारदुःख से छूटूँ।

दुःख से छूटने के लिये हृदय से प्रार्थना करते हैं कि—प्रभो! मुझे अन्य कुछ नहीं चाहिये, एक चैतन्यसुख की प्राप्ति कैसे हो, वह बतलाओ। देखो, यह पात्र शिष्य की पुकार! जिज्ञासु के मन में कैसी भावना होती है, उसकी यह बात है। समस्त संसार में—पाप में या पुण्य में, नरक में या स्वर्ग में जिसे दुःख लगता हो, चैतन्य की समाधि—अनुभूति के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं, किसी परभाव में या किसी संयोग में किंचित् सुख नहीं है, सुख तो चैतन्य की

वीतरागी अनुभूति में ही है—ऐसा जिसके अंतर में भासित हुआ हो, ऐसे जीव की यह जिज्ञासा है कि—हे प्रभो! मैं अपने परमात्मतत्त्व को जान लूँ—ऐसा उपदेश मुझे दो!

## तृषातुर शिष्य को श्रीगुरु परमानंद का अमृत पिलाते हैं

जिसप्रकार पानी के बाहर पड़ी हुई मछली पानी के बिना तड़पती है, उसे कहीं चैन नहीं पड़ता, उसीप्रकार हे प्रभो! चैतन्य के निर्विकल्प सुख के समुद्र से बाहर परभाव में सर्वत्र मैं दु:ख से तड़प रहा हूँ, चार गतियों में कहीं मुझे चैन नहीं है; स्वर्ग में भी चैन नहीं आता; परमात्मतत्त्व में जो सुख भरा है, उसका अनुभव मुझे कैसे हो?—यही मुझे समझना है। प्रभो! संसार में अन्य कोई वांछा नहीं है; अपने चैतन्यसुख के अतिरिक्त अन्य कुछ मैं नहीं चाहता।—ऐसी जिसे अंतर से पुकार आती है, उस शिष्य को श्रीगुरु परमात्मतत्त्व समझाते हैं और जिसप्रकार कोरा घड़ा पानी को चूस लेता है, उसीप्रकार वह शिष्य तुरंत समझ जाता है।

शिष्य को स्वयं ऐसा भासित हुआ है कि अरे, मैंने अनंत काल दु:ख भोगे, अपने आत्मसुख के उपाय का मैंने क्षणमात्र भी सेवन नहीं किया; सुख के उपाय के सेवन बिना अनंत काल दु:ख के सागर में ही डूबता रहा; अब इस दु:ख-सागर का किनारा आये और मैं सुख प्राप्त करूँ, इसका उपाय क्या है? उसे जानकर उसी की आराधना करने की भावना है... एक ही अभिलाषा है, एक ही धुन है, एक ही जिज्ञासा है। जिस परमात्मस्वभाव के लाभ बिना अर्थात् प्रतीति बिना मैं संसार में भटका और जिसकी प्राप्ति से मेरा भ्रमण मिटे—ऐसा परमात्मस्वभाव मुझे बतलाओ।—इसप्रकार जिज्ञासु शिष्य आत्मा का स्वरूप सुनना चाहता है।

## मुझे और कुछ नहीं चाहिये, एक आत्मा ही जानना है—कि जिसे जानने से सुख का अनुभव हो।

आत्मज्ञान के अतिरिक्त जगत में कुछ सार नहीं है। भरत जैसे चक्रवर्ती या स्वर्ग के इन्द्र भी शुद्धात्मा को ही सार समझकर, तीर्थंकर भगवान के निकट विनयपूर्वक उसी का स्वरूप पूछते हैं और बहुमान से श्रवण करते हैं। प्रभो! जगत में सबसे उत्तम और आदरणीय जो शुद्धात्मा, वह कैसा है? स्वयं को उसकी प्रतीति हो, तब भी मुमुक्षु जीव भगवान के पास, मुनिराज के पास जाकर पुन:-पुन: आदरपूर्वक उसका स्वरूप सुनता है। यहाँ (परमात्मप्रकाश में) प्रभाकरभट्ट भी यही बात पूछता है और उसे आचार्य, परमात्मा का स्वरूप समझाते हैं। (प्रत्येक जिज्ञासु शिष्य अपने को प्रभाकरभट्ट के स्थान पर समझें।)

देखो तो सही, शुद्धात्मा के जिज्ञासु को यहाँ भरत-चक्रवर्ती का उत्कृष्ट उदाहरण दिया है। जिसप्रकार ऋषभदेव भगवान की सभा में भरत चक्रवर्ती ने शुद्धात्मा का स्वरूप पूछा था; उसीप्रकार यहाँ संसार से भयभीत होकर आत्मसुख के लिये प्रभाकर भट्ट योगीन्द्रदेव से विनयपूर्वक वही बात पूछता है। शुद्धात्मा की आराधनारूप रत्नत्रय जिनको प्रिय हैं, ऐसे जीव ज्ञानी के निकट उसी के प्रश्न पूछते हैं। वाह! श्रोता भी ऐसे हैं जिन्हें आत्मा अत्यंत प्रिय है, आत्मा के रत्नत्रय प्रिय हैं, व्यवहार में पंच परमेष्ठी की भक्ति प्रिय है; इसके इसके अतिरिक्त संसार में अन्य कुछ जिन्हें प्रिय नहीं है, जो चैतन्य के वीतराग निर्विकल्प आनंदरस के पिपासु हैं और जिनकी राग की या पुण्य-वैभव की पिपासा नहीं है। प्रवचनसार में कहते हैं कि—'परम-आनंद के पिपासु भव्य जीवों के लिये यह टीका रची जा रही है।' समाधिशतक में कहते हैं कि कैवल्यसुख की स्पृहावाले जीवों के लिये पर से विभक्त आत्मा का स्वरूप कहा जाता है। देखो तो सही, संतों ने तो परम आनंद की प्याऊ खोली है। जिसप्रकार प्यासे लोगों के लिये ठंडे पानी की प्याऊ खोली जाती है और वहाँ प्यासे जीव ठंडा पानी पीकर हृदय को शांत करते हैं; उसीप्रकार संसारभ्रमणरूपी ग्रीष्मकाल में भटक-भटककर थके हुए जीवों के लिये भगवान के समवसरण में और संतों की छाया में चैतन्य के वीतरागी परम आनंद-रस की प्याऊ खुली है, वहाँ परम आनंद के पिपासु और जिज्ञासापूर्वक आकर शुद्धात्मा के अनुभवरूपी अमृत का पान करते हैं और परम तृप्त होते हैं... उनका आत्मा शांत होता है। अरे, कहाँ नववें ग्रैवेयक से लगाकर नरक-निगोद के दु:खों का दावानल! और कहाँ इस चैतन्य के अनुभवरूप सुख के वेदन की शांति!

अरे, चैतन्य के परम आनंद के अनुभव बिना जिसे सबकुछ दु:खरूप लगता है और वहाँ से भयभीत होकर जो चैतन्यसुख की आकांक्षा रखता है, ऐसा जीव शुद्धात्मा के अनुभव की ओर जाता है। जिसप्रकार लोग सर्प से भयभीत होकर भागते हैं, उसीप्रकार धर्मात्मा संसार की चारों गति के भव-भ्रमण से भयभीत होकर वहाँ से भागे और भवरहित चैतन्य की शरण ली। जगत में निर्भयस्थान यह एक चैतन्य ही है; वही चार गतियों के दु:ख से बचानेवाला है।

**चहुँगति के दु:ख से डरे, तो तज सब परभाव;**
**शुद्धातम चिंतन करी, ले शिवसुख का लाभ।**

# 'मैं एक ज्ञायकभाव हूँ'

## अनंत गुणों से परिपूर्ण आत्मा का अनुभव करो

श्री समयसार ग्रंथ पर सत्रहवीं बार और श्री नियमसार ग्रंथ पर नौवीं बार पूज्य स्वामीजी के प्रवचन चल रहे हैं। शुद्ध आत्मा की अनुभूति के गंभीर रहस्य पूज्य स्वामीजी खोल रहे हैं। उनमें से छठवीं गाथा का प्रवचन आप पहले पढ़ चुके हैं; यहाँ सातवीं गाथा का प्रवचन दिया जा रहा है। चैतन्य के अनंत भावों का रस जिसमें भरा हुआ है, ऐसी आत्म-अनुभूति ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद विकल्पों से पार है और अनंतगुण के एकरसरूप महा आनंद से भरपूर है। 'शुद्ध आत्मा की ऐसी अनुभूति कैसे होती है'।—ऐसी एक ही आकांक्षावाले निकटवर्ती शिष्य को आचार्य भगवान ने अनुभूति की रीति बतलाई है और शिष्य आनंद की तरंगों सहित ऐसी अनुभूति कर लेता है।—उसका यह अद्‌भुत वर्णन मुमुक्षुओं को अवश्य हर्षित करेगा।

पाँचवीं गाथा में आचार्यदेव कहते हैं कि हम जो शुद्धात्मा का स्वरूप बतलाते हैं, वह यों ही नहीं कहते, परंतु आत्मा के आनंद का अत्यंत अनुभव करनेवाले वीतरागी गुरुओं के प्रसाद से तथा अपने आत्मा के स्वानुभव से हमें जो निज-वैभव प्रगट हुआ है, उस समस्त निज-वैभव के बल से इस समयसार में शुद्ध आत्मा का स्वरूप कहते हैं... और हे श्रोताजनों! तुम भी अपने आत्मा के स्वानुभव से वह प्रमाण करना।

—ऐसा कहकर पश्चात् छठवीं गाथा में शुद्ध आत्मा का स्वरूप बतलाया। प्रमत्त या अप्रमत्त, ऐसे भेद रहित, शुभाशुभ कषायचक्र से भिन्न, स्पष्ट प्रकाशमान ज्योतिरूप जो ज्ञायकभाव है, उस भावस्वरूप से आत्मा का अनुभव करने पर वह शुद्धतारूप से परिणमित होता है।—ऐसे आत्मा को शुद्ध कहते हैं।

ऐसा शुद्ध आत्मा ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद-विकल्पों से भी पार है। आत्मा ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप है—ऐसा कहने से एक आत्मा को लक्ष में लेना, भेद के विकल्प में नहीं रुकना। ज्ञानी को आत्मा की अनुभूति में अनंत धर्मों का समावेश होता है—यह बात सातवीं गाथा में बतलाते हैं।

अहा, ऐसा आत्मतत्त्व! वीतरागी जैनधर्म में जन्म लिया और ऐसा तत्त्व सुनने को मिला; परंतु उसे लक्ष में न ले तो जीव को क्या लाभ? भाई, ऐसा सुंदर मार्ग प्राप्त करके तू आत्मा की महिमा लक्ष में ले। आत्मा की महिमा लक्ष में लेने से तेरे भव का अंत आ जायेगा।

आत्मा को रागयुक्त अशुद्ध अनुभवना, वह संसार का बीज है।

आत्मा को ज्ञायकभावरूप शुद्ध अनुभवना, वह मोक्ष का बीज है।

आत्मा एक ज्ञायकभाव है; ज्ञायकभावरूप आत्मा कैसा है और उसका अनुभव कैसे होता है? उसकी अलौकिक रीति संतों ने इस समयसार में प्रगट की है। अहा, कुन्दकुन्दस्वामी ने ऐस मार्ग को प्रकाशित न किया होता तो भरतक्षेत्र के जीव मोक्षमार्ग को कैसे जानते? भरतक्षेत्र के जीवों पर उनका महान उपकार है।

आत्मा का शुद्धस्वरूप कैसा है कि जिसके अनुभव से मोक्षमार्ग प्रगट होता है?—उसकी यह बात है। आत्मा को रागी-द्वेष-कर्मयुक्त अशुद्ध कहना, वह बात तो दूर रही, उसमें आत्मा की शोभा नहीं है; उसका निषेध तो छठवीं गाथा में किया; तदुपरांत आत्मा ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है—ऐसे भेद भी एक आत्मा की अनुभूति में नहीं हैं; उन भेदों के लक्ष से आत्मा शुद्धरूप अनुभव में नहीं आता, परंतु विकल्प होता है, अशुद्धता होती है। इसलिये अशुद्धता के निषेध में वास्तव में गुणभेद का भी निषेध आ जाता है।

ज्ञायक आत्मा के अभेद अनुभव में गुण-पर्याय के भेद नहीं हैं; अनंत गुण-पर्यायों का जिसने पान किया है, ऐसा एक शुद्धद्रव्य ही अनुभव में आता है;—ऐसे अनुभव से शुद्ध आत्मा ज्ञात होता है। गुण-पर्यायें उसमें अभेदरूप से समा जाती हैं, परंतु अभेद की अनुभूति में संपूर्ण आत्मा अनंत गुण-पर्यायों से एकाकाररूप-एकरसरूप स्वाद में आता है। समस्त गुणों का शुद्धकार्य एकसाथ परिणमित हो रहा है। ऐसे आत्मा को श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव में लिये बिना जीव का उद्धार नहीं होता अर्थात् दु:ख से छूटकर आनंद का अनुभव नहीं होता।

अन्य विकल्पों की तो बात ही क्या, परंतु अपने में ज्ञान और आत्मा—ऐसे गुण-गुणी भेदरूप व्यवहार के विकल्प में रुके, तब भी आत्मा शुद्धस्वरूप से अनुभव में नहीं आता। विकल्प से पार होकर ज्ञान अंतरोन्मुख हुआ, तब सच्चे आत्मा का अनुभव होता है। जो आत्मा में प्रविष्ट हुए, वे इसप्रकार विकल्प से पार होकर एक अभेद चैतन्यवस्तु के अनुभव से ही प्रविष्ट हुए हैं। ऐसा अनुभव होने पर ज्ञानी को सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्रदशारूप परिणमन हो जाता है और वह निर्मल पर्याय अंतर में अभेद होती है; भेद पर लक्ष रहने से किसी भी गुण की निर्मलता का विकास नहीं होता; अभेदवस्तु के अनुभव में एकाग्र होने से समस्त गुण एकसाथ निर्मलभावरूप परिणमित होने लगते हैं। ऐसे अनंत भावों का पान करके एक द्रव्य बैठा है—उसका धर्मी अनुभव करता है। ऐसा अनुभव करनेवाले धर्मी को ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद भी विद्यमान नहीं हैं, एक सर्वोपरि शुद्धज्ञायकतत्त्व ही उसके अनुभव में प्रकाशित है। भिन्न-भिन्न अनंत गुणों का स्वाद है अवश्य, परंतु वे सब एक ज्ञायकतत्त्व में समा जाते हैं, ज्ञायकतत्त्व के अनुभव में उन सर्व गुणों का स्वाद किंचित् एकाकाररूप से समा जाता है। अनंत धर्मों से अभेद ऐसे आत्मा के अनुभव को शुद्ध कहते हैं; उसका जो अनुभव करे वह ज्ञानी है।

अभेद के अनुभव में भेद नहीं है, तो फिर गुण-गुणी के भेद से क्यों कथन किया?

तो कहते हैं कि—जो शिष्य शुद्ध आत्मा समझने के लिये आया है, ऐसे निकटवर्ती शिष्य को अभी अभेद आत्मा की तो खबर नहीं है; उस निकटवर्ती शिष्य को आत्मा का स्वरूप समझाने के लिये गुण-गुणीभेद करके कुछेक धर्मों द्वारा कहा कि आत्मा ज्ञान है, आत्मा दर्शन है, आत्मा चारित्र है। ऐसे भेद, वह व्यवहार है, परंतु उस व्यवहार के विकल्प में रुकने से आत्मा अनुभव में नहीं आता, इसलिये वह भेदरूप व्यवहार कहीं परमार्थ नहीं है। भेद किये, वे कहीं भेद के विकल्प में रुकने के लिये नहीं किये हैं, परंतु जिसे अभेद तत्त्व का लक्ष नहीं है, उसे वह समझाते हुए बीच में भेद आ जाता है। प्रयोजन भेद का नहीं, प्रयोजन तो अभेद तत्त्व बतलाने का है। उस अभेद के लक्षसहित ऐसे गुणभेद को व्यवहार कहा जाता है। कहनेवाले का आशय अभेद का लक्ष कराने का है, और 'निकटवर्ती शिष्य' भी वैसे ही आत्मा का अनुभव करने के ध्येय से सुनता है, इसलिये वह भेद के विकल्प में खड़ा न रहकर अंतर में श्रीगुरु का आशय पकड़कर अभेद ज्ञायकतत्त्वरूप से अपना अनुभव करता है।

'एकत्व' के अनुभव में निर्विकल्प शांति है, तीन भेदों में शांति नहीं है। अहा, चैतन्य के पाताल में गहराई तक ले जाकर आत्मा बतलाया है। भाई! तुझे सच्चा आत्मा प्राप्त करना हो, (अनुभव में लेना हो) तो चैतन्य के पाताल में उतर! विकल्प तो चैतन्यसमुद्र से बाह्य हैं, उन विकल्पों में खड़ा रहकर ढूँढ़ेगा तो आत्मा नहीं मिलेगा। प्रभो! तुझे रागवाला और भववाला आत्मा अशुद्ध कहना, वह तो कलंक है, शरम है, उसमें तेरा बड़प्पन नहीं है। अरे, 'आत्मा ज्ञानवाला'—ऐसे गुणभेद के विकल्प द्वारा भी आत्मा की शोभा नहीं है। आत्मा की शोभा, आत्मा का बड़प्पन तो अनंतगुण-पर्यायों से अभेद ऐसे एकाकार ज्ञायकतत्त्व के अनुभव में है। ऐसा अनुभव करनेवाला धर्मी जीव वीतरागरस का पान करता है। ऐसा अनुभव करे तो उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है, वही सच्चा जैन है। यहाँ तो कहते हैं कि—ऐसी अनुभूति में ज्ञानी को अनंतरस से भरपूर ऐसा जो चैतन्यरस का मंथन होता है, उसमें ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद भी विद्यमान नहीं हैं।

अहो, संतों ने तो अकेले वीतरागी चैतन्यरस का मंथन किया है। उस चैतन्यरस में किसी विकल्प का अवकाश नहीं है। प्रभु! ऐसा आत्मा तू स्वयं है। अपने ऐसे चैतन्य-पाताल में उतरने से वहाँ कोई विकल्प नहीं है, मात्र निर्विकल्प शांत चैतन्यरस ही अनुभव में आता है। उसमें चैतन्यरस में अनंत गुण की निर्मल पर्याय का रस समा जाता है। ऐसा अनुभव किया, तब 'मैं आत्मा ऐसा हूँ'—ऐसी प्रतीति हुई; ज्ञायक भगवान अपने शुद्धस्वरूप से प्रगट हुआ।

ऐसे आत्मा का अनुभव करने के लिये जो 'निकटवर्ती' हुआ है,—एक तो गुरु के प्रति श्रद्धापूर्वक यह समयसार सुनने के लिये गुरु के पास आया है और शुद्ध आत्मा की बात सुनने को खड़ा है, इसप्रकार 'निकटवर्ती' है; और दूसरे, अंतर में भाव से भी वह शिष्य शुद्ध आत्मा के अनुभव के समीप आया है, इसलिये 'निकटवर्ती' है। उसे अभी अभेद का अनुभव नहीं है, इसलिये भेदपूर्वक अभेद का उपदेश देते हैं, परंतु वह शिष्य स्वयं भेद के विकल्प में नहीं रुकना चाहता, वह तो शुद्धात्मा के ही अनुभव का कामी है, अन्यत्र कहीं वह नहीं रुकता; और श्रीगुरु भी भेद से पार ज्ञायकतत्त्व बतलाते हैं; इसलिये शिष्य भेद के विकल्प का भी निषेध करके उस एक अभेद ज्ञायकतत्त्व को अनुभव में ले लेता है। ऐसे अनुभव में ज्ञायक आत्मा के अनंत कर्मों का रस समा जाता है, उसमें गुणभेद नहीं है, एक शुद्धज्ञायकरूप से ही आत्मा प्रकाशित है।

धर्मी का स्वरूप समझाने के लिये उसके ज्ञानादि धर्मों का भेद करके समझाया है,

उसमें भी ऐसे धर्म लिये हैं कि जिनके द्वारा धर्मी आत्मा का पर से भिन्न स्वरूप समझ में आये। रागवान कहकर आत्मा की पहिचान नहीं करायी, परंतु 'ज्ञान, सो आत्मा' ऐसा कहकर रागादि से रहित शुद्ध आत्मा की पहिचान करायी है।

गुण-पर्यायोंरूप अपने अनंत धर्मों से आत्मा की पृथक्ता नहीं है। एक परमार्थ वस्तु में उसके गुण-पर्यायों का भेद नहीं है-भिन्नता नहीं है। जो अनुभव में एकाग्र हैं, वे तो अभेद ज्ञायक वस्तु का अनुभव करते हैं, उसमें वे कोई भेद उत्पन्न नहीं करते; परंतु निकटवर्ती शिष्य को समझाने के लिये जो उपदेश देते हैं, वे आचार्य स्वयं भी सविकल्पदशा में आये हैं और शिष्य को समझाने के लिये धर्मी के कुछेक धर्मों का भेद करके कथन करते हैं कि ज्ञानी आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप है। आत्मा को दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप कहा, उसमें राग और शरीरादि निकल गये, विकल्प पृथक् हो गये। ज्ञानादि धर्मों की एकता रागादि के साथ नहीं है परंतु आत्मा के साथ ही उनकी एकता है। इसप्रकार धर्म द्वारा भी रागादि से भिन्न ऐसा आत्मा ही लक्ष में आता है। भेद कहा, वह तो मात्र व्यवहार से ही है; परमार्थ से तो जिसने अनंत धर्म का पान किया है, ऐसी एक अभेद आत्मवस्तु है; उसका अनुभव करनेवाले को कोई भेदविकल्प नहीं है। ऐसा अनुभव करनेवाले आत्मा को ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहा जाता है।

अरे, विकल्प में आत्मतत्त्व कैसे आयेगा? अनंत गुणस्वरूप संपूर्ण चैतन्यवस्तु भेद के विकल्प से कैसे प्राप्त होगी? जब ज्ञान सर्व विकल्पों से पृथक् होकर चैतन्यस्वभाव में अभेद होकर परिणमित हो, तब उसमें अभेद द्रव्य संपूर्ण अनुभव में आता है। इस अनुभव में अनंत गुण-पर्याय समा गये हैं; एक अभेद वस्तुरूप से ही आत्मा प्रसिद्ध होता है... गुण-पर्याय के भेदरहित संपूर्ण आत्मा अनंत गुण के मिश्रित स्वादरूप अनुभव में आता है; इसलिये उसमें निर्विकल्प शांतरस का ही वेदन है; विकल्पों की आकुलता उसमें नहीं है।

पर्याय जहाँ स्वभावोन्मुख होकर एकाग्र होती है, वहाँ एकरूपता ही अनुभव में आती है। उस अनुभव में अनंत गुणों का स्वाद एकसाथ है; इसलिये वह गुणों का आस्वाद किंचित् एकमेक-मिश्रित हो गया है... अनुभव में अनंत गुणों के आनंदरस का स्वाद आता है... ऐसा सम्यग्दृष्टि का अनुभव है। आत्मा का स्वरूप ही ऐसा है। अहा, एकरूप आत्मा की अनुभूति में अनंत गुणों का रस आता है। अनुभव का ऐसा महाचैतन्यरस, उसमें अनंत गुणों के शुद्ध स्वाद

का समावेश है, परंतु उसमें कहीं विकल्प का समावेश नहीं होता। समस्त गुणों की शुद्धता का स्वाद अनुभव में है, परंतु उसमें अशुद्धता नहीं है; ऐसे शुद्ध चैतन्य के अनुभवरस का पान जिसने किया, उसे चैतन्य की अद्भुत-अनोखी मस्ती है; फिर संसार का (परभाव का) रस उसे नहीं रहता।

ऐसे अभेद ज्ञायकस्वरूप का जो अनुभव करते हैं, वे ज्ञानी हैं; वे ही सच्चे भेदज्ञानी पंडित हैं; ऐसे ज्ञानी को अपने अनुभव में कोई भेद नहीं है, विकल्प नहीं है। एकबार ऐसा निर्विकल्प अनुभव हुआ, भेदज्ञान हुआ, पश्चात् किसी भी विकल्प को वे ज्ञानी अपने शुद्ध-ज्ञायकतत्त्व में नहीं मिलाते; ज्ञायकतत्त्व को विकल्प से भिन्न का भिन्न अनुभव करते हैं। अनुभव, वह पर्याय है, परंतु उसमें द्रव्य-पर्याय के भेद नहीं रहते; एकरूप धर्मी वस्तु का अनुभव है। ऐसा अनुभव हो, तब ज्ञायकभाव प्रगट हुआ कहा जाता है।

एकरूप ज्ञायकतत्त्व का अनुभव करनेवाले ज्ञानी को 'दर्शन नहीं है, ज्ञान नहीं है', अर्थात् अनुभव में 'यह दर्शन, यह ज्ञान'—ऐसे भेद नहीं रहते, परंतु पर्याय अभेदरूप से अनुभव में समा जाती हैं। ज्ञानी को दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं है अर्थात् ज्ञानी के अनुभव में दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भेद नहीं रहता। यह द्रव्य, यह पर्याय—ऐसे भेद पर लक्ष रहे, तब तक सच्चा आत्मा अनुभव में नहीं आता, वहाँ तो विकल्प का अनुभव रहता है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद निकाल देने पर क्या रहा?—कि एक शुद्ध ज्ञायकरूप से अपना अनुभव रहा। ऐसा अकेला ज्ञायक ही शुद्ध है, विकल्प और भेद सब अशुद्ध हैं। भेद-विकल्पोंरूप अशुद्धता से पार ज्ञायक का अनुभव ही एक शुद्ध है; ऐसा अनुभव करनेवाला ज्ञानी जानता है कि:—

'मैं एक ज्ञायकभाव हूँ।'

## अपूर्व ज्ञान-आनंद की तरंग सहित शिष्य समझ जाता है।

श्रीगुरु ने ज्ञायक आत्मा बतलाया; और शिष्य को समझाने के लिये इतना भेद करके कहा कि 'दर्शन-ज्ञान-चारित्र सहित आत्मा है।'—इतना सुनने पर भी शिष्य दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद-विकल्प में नहीं खड़ा रहा परंतु ज्ञान को अभेद में एकाग्र करके सीधा आत्मा

को पकड़ लिया कि—अहो, ऐसा मेरा आत्मा श्रीगुरु ने मुझे बतलाया!—इसप्रकार श्रीगुरु ने भेद करके अभेद आत्मा समझाया और पात्र शिष्य भी तुरंत भेद का लक्ष छोड़कर अभेद आत्मा को समझ गया। देर नहीं लगाई, अन्य किसी लक्ष में नहीं रुका, परंतु ज्ञान को शीघ्र ही अंतर में एकाग्र करके आत्मा को समझ लिया। समझने पर उसे क्या हुआ?—कि तुरंत अत्यंत आनंदसहित सुंदर बोधतरंगें में उछलने लगीं। अहा, ज्ञान के साथ परम आनंद की लहरें उठने लगीं... मानों संपूर्ण आनंद का समुद्र उमड़ पड़ा... अपने अंतर में ही आनंद का सागर दृष्टिगोचर हुआ। निर्विकल्प अनुभूति करके भगवान स्वरूप से स्वयं ही अपने में प्रगट हुआ।

जिसप्रकार इस शिष्य ने तत्काल निर्विकल्प आनंदसहित आत्मा का अनुभव किया, उसीप्रकार प्रत्येक जीव में ऐसा अनुभव करने की शक्ति है। अंतर में ज्ञान को एकाग्र करना चाहिये। वाणी या विकल्प में कहीं न रुककर शुद्धात्मा पर दृष्टि स्थिर करके ज्ञान को उसमें एकाग्र किया, वहाँ अतीन्द्रिय ज्ञानतरंगें प्रगट हुईं और साथ ही परम आनंद का अनुभव हुआ। सम्यग्दर्शन होने का यह वर्णन है; इसमें सम्यक्त्व की पाँचों लब्धियों का भी समावेश हो जाता है।

सम्यग्दर्शन के लिये आचार्यदेव शुद्ध आत्मा का स्वरूप समझाते हैं, तब जिज्ञासु शिष्य दृष्टि स्थिर करके अर्थात् समझने की उत्कंठा से ज्ञान को एकाग्र करके लक्ष में लेता है; उसे शुद्धात्मा को लक्ष में लेने की अभिलाषा है। सुन-सुनकर दूसरी बातों में नहीं रुकता, परंतु स्थिर दृष्टि से समझने के लिये ज्ञान को एकाग्र करता है।

शुद्धात्मा का स्वरूप सुनते हुए तुरंत ही उसमें उपयोग लगाकर एकाग्रता करता है, प्रमाद नहीं करता, 'घर जाकर विचार करूँगा, जरा अवकाश मिले तो करूँ'—ऐसी अवहेलना नहीं करता, परंतु तत्क्षण ही वैसे शुद्ध आत्मा में उपयोग को लगाता है और आनंदपूर्वक आत्मा का अनुभव करता है—ऐसी उत्तम पात्रतावान शिष्य तुरंत ही सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है।

श्रोता शिष्य ऐसा पात्र था कि भेद की दृष्टि छोड़कर सीधा अभेद में प्रविष्ट हो गया। भेद का-व्यवहार का-शुभ का अवलंबन छोड़ने में उसे संकोच नहीं हुआ; शुद्ध आत्मा को लक्ष में लेते ही महान आनंदसहित ऐसा निर्मल ज्ञान विकसित हुआ कि समस्त भेद का—व्यवहार का—राग का आलंबन छूट गया। ज्ञान और राग की अत्यंत भिन्नता अनुभव में आ गई। ज्ञान के साथ आनंद होता है; जिसमें आनंद का वेदन न हो, वह ज्ञान सच्चा ज्ञान ही नहीं है। आनंदरहित

अकेले ज्ञातृत्व को वास्तव में ज्ञान नहीं कहते। अकेला परलक्षी ज्ञान, वह सच्चा ज्ञान ही नहीं है।

शिष्य जब तक सीधा अभेद को प्राप्त नहीं हुआ था, तब तक बीच में भेद था, श्रीगुरु ने भी भेद से समझाया था, परंतु वह भेद, भेद का अवलंबन करने के लिये नहीं था; वक्ता या श्रोता किसी को भेद के अवलंबन की बुद्धि नहीं थी, उनका अभिप्राय तो अभेद वस्तु ही बतलाने का तथा उसी का अनुभव करने का था। उस अभिप्राय के बल से ज्ञान को अंतर के अभेद स्वभाव में एकाग्र करके दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद का अवलंबन भी छोड़ दिया... और तुरंत ही महान अतीन्द्रिय आनंदसहित सम्यग्ज्ञान की सुंदर तरंगें उछलने लगीं... सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, परम आनंद हुआ। ऐसी निर्विकल्प अनुभूतिसहित शिष्य अपने आत्मा का शुद्धस्वरूप समझ गया।

—ऐसे भाव से समयसार का श्रवण करे, उसे भी निर्विकल्प आनंद के अनुभवसहित सम्यग्दर्शन होता ही है। यहाँ तो कहते है कि—देर नहीं लगती, परंतु तुरंत होता है। अपने आत्मा की प्राप्ति के लिये जिसकी सच्ची तैयारी हो, उसे तुरंत उसकी प्राप्ति होती ही है; अरे, आकाश से उतरकर संत उसे शुद्धात्मा का स्वरूप समझाते हैं। जिसप्रकार भगवान महावीर के जीव को सिंह के भव में और भगवान ऋषभदेव के जीव को भोगभूमि के भव में सम्यक्त्व की तैयारी होने पर ऊपर से गगनविहारी मुनियों ने वहाँ उतरकर उन्हें आत्मा का स्वरूप समझाया और वे जीव भी सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए। कैसे प्राप्त हुए ?—वह बात इस गाथा में समझायी है। भेद का लक्ष छोड़कर, अनंत धर्मों से अभेद आत्मा में ज्ञान को एकाग्र करने से निर्विकल्प आनंद के अनुभवसहित सम्यग्दर्शन प्राप्त किया... सुंदर बोध-तरंगें उल्लसित हुईं।—इसप्रकार तत्काल सम्यग्दर्शन होने की रीति समझाकर संतों ने मार्ग सरल कर दिया है।

## आत्मा का जीवन

आत्मा में 'जीवन' शक्ति है; अपने चैतन्य-प्राण को धारण करके यह जीव सदा जी रहा है। जीव सदा परिपूर्ण जीवित है, वह कभी अपनी चेतना को नहीं छोड़ता, इसलिये उसका कभी मरण नहीं है। जीव किसी शारीरादि के आधार से नहीं जीता, परंतु ज्ञान से ही जीता है। आत्मा की जीवन-शक्ति को पहिचान उसे सच्चा आत्म-जीवन प्राप्त होता है।

# सच्चा वैभव

अचिन्त्य निधान से भरपूर तेरा चैतन्यतत्त्व ही सर्वोत्कृष्ट है; उससे उस अन्य कुछ नहीं है।—ऐसा जानकर हे जीव! तू उस एक को ही भज और अन्य सब छोड़। 'एकं भज सर्वं त्यज।'

साधक कहता है कि हे जिनेन्द्र! मैं स्वर्गादि में कहीं भी होऊँगा, तथापि आपके चरण की भक्ति नहीं छोड़ूँगा। पुण्य-पाप से पार जो चैतन्यतत्त्व प्रतीति में लिया है, उसकी शांति का स्वाद चखा है, उस चैतन्य का प्रेम अब कभी छूटना नहीं है। बीच में एकाध भव होगा और स्वर्गादि के वैभव का संयोग आयेगा, परंतु हमें उसका प्रेम होनेवाला नहीं है; हमारे चैतन्यतत्त्व से उच्च जगत में कुछ नहीं है।

जो जीव राजा-महाराजाओं के विविध प्रकार के महावैभव को सुनकर या देखकर उसकी अभिलाषा करता है, उससे आचार्यदेव कहते हैं कि—अरे! तू जड़मति है। चैतन्य के परम वैभव को भूलकर तू पुण्य के फलरूप जड़वैभव की वांछा करता है, तो तू जड़मति है... तेरी बुद्धि जड़ में रुक गई है और इससे तू व्यर्थ क्लेश को ही प्राप्त करता है। अरे, केवलज्ञानादि अनंत कार्य के कारणरूप हो, ऐसा गंभीर तेरा चैतन्यस्वभाव, उस चैतन्य के अपार अद्भुत वैभव की बात तुझे सुनाई, उसे सुनकर उसका उल्लास क्यों नहीं आता? और बाह्य वैभव की बात सुनकर उसका उल्लास क्यों आता है? अमुक राजा को ऐसी मोटर है, ऐसा महल है, ऐसी रानी है और करोड़ों रुपये रोज की आमदनी है—ऐसे बाह्यवैभव की बात सुनकर धर्मी को तो ऐसा लगता है कि अरे! चैतन्यवैभव के निकट इस सबका क्या मूल्य! चाहे जितना बाह्य-वैभव एकत्रित हो, सारी दुनिया का जड़वैभव मिल जाये, तथापि मेरे चैतन्यवैभव की अपूर्व शांति का एक अंश भी उसमें से नहीं मिल सकता। अज्ञानी तो उस बाह्यवैभव की बात सुनकर आश्चर्य प्राप्त करता है; क्योंकि चैतन्य के अलौकिक वैभव की उसे खबर नहीं है। अरे, चैतन्य के अतीन्द्रिय आनंद की तो बात ही क्या है! परंतु जिनमार्ग की भक्ति के एक शुभविकल्प से जो पुण्य बँधे, उससे देवलोक के वैभव का ढ़ेर अपने आप प्राप्त हो जायेगा; इसलिये उसका आश्चर्य छोड़! अरे, उसमें क्या! वह तो विकार का फल है; अंतर में चैतन्य की अनुभूति के

फल की जो अपूर्व शांति, उसकी तो गंध भी वैभव में नहीं है।

केवलज्ञान, केवलसुख आदि अनंत वैभव जिसमें में से प्रगट हो, ऐसा भंडार आत्मा में भरा है; आत्मा में ऐसा कारणस्वभाव है कि जो केवलज्ञानादि अनंत कार्य का एकसाथ कारण हो। केवलज्ञानादि चतुष्टय और ऐसे अनंत गुणों की निर्मलदशारूप अनंत कार्य, उसका कारण होने की शक्ति वर्तमान में तुझमें वर्तती ही है; उसे जानकर उसका सेवन करने से तुझे सम्यक्त्वादि अनंत वैभव प्रगट होगा और बाह्य वैभव की दृष्टि छूट जायेगी। ऐसे मेरे अचिंत्य चैतन्यतत्त्व से उच्च वास्तव में दूसरा कुछ नहीं है—ऐसा समझकर हे जीव! तू तीक्ष्णबुद्धि द्वारा अपने शुद्धतत्त्व एक को ही भज! '**एकं भज... सर्वं त्यज**'

(नियमसार, कलश 28-29)

## ऐसे आत्मा को तुम देखो!

भाई! एक बार शुद्धनय द्वारा अंतर में प्रहार करके तू आनंदस्वरूप आत्मा को दुःख से पृथक् कर दे! शुद्धनय अर्थात् राग से भिन्न हुआ ज्ञान अंतर में अभेद होकर अपने आत्मा का शुद्धरूप से अनुभव करता है। आत्मा का अनुभव करनेवाला शुद्धनय आत्मा से भिन्न नहीं है, आत्मा के साथ वह अभेद है, इसलिये वह आत्मा ही है। आत्मा जैसा है, वैसा अनुभूति में प्रगट हुआ; इसलिये अनुभूति, वह आत्मा ही है।

अनुभूति में आत्मा प्रकाशित होता है, अनुभूति में राग प्रकाशित नहीं होता। धर्मी की अनुभूति जो आत्मा आया, वह कैसा है? कि अबद्ध-स्पृष्ट है; उसमें कर्म का बंधन नहीं है; पुद्गल का संबंध नहीं है। ऐसी अबद्ध-अस्पृष्ट पर्यायरूप से परिणति आत्मा, वह स्वयं शुद्धनय है।—'यह शुद्धनय, और यह उसका विषय'—ऐसे भेद अनुभूति में नहीं है। शुद्धनयरूप से आत्मा ही प्रकाशित होता है।

# ज्ञान और कषाय की भिन्नता की सिद्धि

[ कषाय जीव का लक्षण नहीं है, इसलिये अकषायपना हो सकता है ]

ज्ञान आत्मा का सहजस्वभाव है, इसलिये कर्म के निमित्त बिना स्वयमेव आत्मा ज्ञानरूप से वर्तता है; परंतु ज्ञान की भाँति कषाय कहीं आत्मा का सहज स्वभाव नहीं है, वह तो विभाव है, इसलिये कर्म के निमित्त बिना आत्मा कभी कषायरूप नहीं होता। इसप्रकार ज्ञान और कषाय की भिन्नता जानना।

षट्खंडागम पुस्तक पाँच, पृष्ठ 223 में कषाय और ज्ञान की भिन्नता संबंधी अच्छी बात समझायी है।

उसमें जब 'भाव अनुगम' में जीव के अकषायभाव का प्रतिपादन किया, तब शिष्य पूछता है कि—प्रभो! कषाय तो जीव का गुण है, इसलिये उसका विनाश कैसे होगा? जिसप्रकार ज्ञान-दर्शनादि जीवगुणों का विनाश नहीं होता; यदि जीव के गुणों का विनाश हो तो ज्ञानादि की भाँति जीव का भी विनाश हो जाये! इसलिये जिसप्रकार ज्ञानादि गुणों का विनाश नहीं होता, उसीप्रकार कषाय भी जीव-गुण होने से उसका विनाश नहीं होना चाहिये। इसलिये अकषायभाव के स्थान नहीं बन सकते।

उसके उत्तर में आचार्य महाराज कहते हैं कि—ज्ञान-दर्शन का विनाश होने से जीव का विनाश हो जायेगा—यह तो बराबर है, क्योंकि वे तो जीव के लक्षण हैं; परंतु कषाय तो कहीं जीव का लक्षण नहीं है; कर्मजनित कषाय को जीव को लक्षण मानने में विरोध आता है। और कषायों का कर्मजनितपना असिद्ध नहीं है, क्योंकि कषायों की वृद्धि होने से जीव के लक्षणभूत ज्ञान की हानि होती है, वह अन्य प्रकार नहीं हो सकती; इसलिये कषाय कर्मजनित है (ज्ञानजनित नहीं है) और वह जीव का गुण नहीं हैं, इसलिये उसका अभाव हो सकता है। कषाय तो ज्ञान का विरोधी है; एक गुण दूसरे गुण का विरोधी (घातक) नहीं हो सकता; क्योंकि किसी गुण में ऐसा देखने में नहीं आता। इसलिये ज्ञानादि जिसप्रकार जीव के लक्षणभूत गुण हैं, उसीप्रकार कषायें वे जीव के गुण नहीं हैं; इसलिये कषायरहित ऐसे अकषायभावयप स्थान बन सकते हैं।

—इस न्याय से ज्ञान और कषायों की भिन्नता जानने से जीव को भेदज्ञान होता है और अनुक्रम से कषायों का अभाव होकर उसे अकषायभाव होता है।

### ज्ञान और कषाय की भिन्नता

* 'जीव' में से कषायें निकाल देने से कहीं शून्य बाकी नहीं रहता, परंतु कषायरहित शुद्ध ज्ञानस्वरूप संपूर्ण जीव रहता है।
* 'जीव' में से ज्ञानलक्षण निकाल देने से तो जीव शून्य ही हो जायेगा, ज्ञानरहित जीव रह ही नहीं सकता। इसलिये ज्ञानत्वरूप जीव है, वह कषायों से भिन्न है।
* 'जीव' में से शरीर, कर्म और राग-द्वेषादि कषायें निकल सकती हैं, परंतु जीव में से ज्ञानादि नहीं निकल सकते। इसलिये कहा है कि '**अबाध्य अनुभव जो लहै, वह है जीवस्वरूप।**'
* शरीर, कर्म और कषायें—यह सब निकाल देने पर भी जीव उन सबके बिना अपने ज्ञानस्वरूप से स्थित रहता है, इसलिये जीव उन सब पदार्थों की अपेक्षा ऊर्ध्व है।
* जीव में से रागादि सब निकालते-निकालते अन्त में जो नहीं निकल सकता—ऐसा अबाध्य ज्ञानस्वरूप, यह तेरा असली ज्ञानस्वरूप है, जो निकल सके, वह तेरा असली स्वरूप नहीं।
* रागरहित आत्मा का अनुभव हो सकता है; इसलिये राग, वह आत्मा का स्वरूप नहीं है।
* ज्ञानरहित आत्मा का अनुभव नहीं हो सकता; इसलिये आत्मा ज्ञानस्वरूप है।

—ऐसा सर्वप्रकार से भेदज्ञान करके राग से भिन्न ज्ञान का स्वाद लेना चाहिये।

—०००—

## जीवन की सफलता

अरे, जगत के जीव अपने चैतन्यसुख को भूलकर विषय-कषाय में सुख मान रहे हैं, परंतु अपना जो चैतन्यसुख है, उसकी सुरक्षा का अवकाश नहीं लेते; उनका जीवन तो विषयों में नष्ट हो जायेगा और व्यर्थ चला जायेगा। विषयों से विरक्त होकर आत्मिक सुख के अभ्यास में जो जीवन बीतता है, वही सफल है।

# धन्य साधकदशा!

## शुद्ध तत्त्व के सतत अनुभव में हमें अन्य कोई चिंता नहीं

[ नियमसार, कलश 32-33-34 ]

वाह! साधक की दशा तो देखो! आनंदस्वरूप के साधक को अन्य चिंता का बोझ कैसा? आनंद के अवसर में शोक कैसा? हम तो दूसरों की चिंता छोड़कर, अपने शुद्धतत्त्व का ही आनंदपूर्वक अनुभव करते हैं। ऐसा अनुभव करके संत स्वयं कृतकृत्य हुए हैं और जगत को भी उसकी रीति बतलाकर कृतकृत्य कर दिया है।

चैतन्य-सुख में मग्न जीव अपने निजभाव से भिन्न ऐसे सर्व बाह्य पदार्थों में सुख की कल्पना छोड़ देते हैं। पुण्यजनित अनुकूलता का ढेर हो या पापजनित प्रतिकूलता का—दोनों से भिन्न हमारा आत्मा ही चैतन्यसुख का समुद्र है—इसप्रकार धर्मी जीव स्वानुभूति से अपने में मग्न होते हैं, वहाँ बाह्य की चिंता कैसी?

धर्मी कहते हैं कि अहो! विभावरहित हमारा शुद्ध स्वभाव परम आनंद से भरपूर हमारे अंतर में विद्यमान है, हम सतत उसका अनुभव कर रहे हैं—फिर अपने अनुभव से बाह्य ऐसे परभावों की हमें चिंता नहीं। परभाव तो भिन्न हैं, वे कहीं हमारी चैतन्यसत्ता में सत्‌रूप नहीं हैं। चैतन्य में तो वे असत् हैं। ऐसे चैतन्यतत्त्व के अद्वितीय सुख का हम अनुभव कर रहे हैं, फिर हमें अन्य कोई चिन्ता नहीं है।

भाई! तुझे शांति चाहिए हो तो अपने ऐसे तत्त्व को अनुभव में ले, तेरे अंतर में ही वह विराजमान है। जिसमें सर्व राग-द्वेष-अशांतिरूप विभाव असत् हैं, ऐसा आत्मा का सहज स्वभाव है, उसका अनुभव करो! हम उसका सतत अनुभव कर रहे हैं, और तुम भी सुखी होने के लिये उसका अनुभव करो। ऐसे तत्त्व के अनुभव के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार जगत में कहीं किंचित् भी सुख नहीं है-नहीं है। अरे, जो तुम्हारे सत् में नहीं, उसमें तुम्हारा सुख कैसे होगा? इसलिये संयोग और विभाव की चिंता छोड़कर अपने परिणाम को इस चैतन्यतत्त्व में

एकाग्र करो। स्वतत्त्व में जहाँ परिणाम एकाग्र हुआ, वहाँ चिंता या दु:ख नहीं। बाह्य चिन्ता को छोड़कर अंतर में दृष्टि लगाकर शुद्ध स्वभाव का अनुभव करना ही एक मुक्ति का मार्ग है, इसके अतिरिक्त अन्य किसी मार्ग में मुक्ति नहीं है।

अरे, हमारे चैतन्यस्वभाव के अस्तित्व में विभाव कैसा? हमारे चैतन्यभाव में परभावों का प्रवेश नहीं है। ऐसे स्वभाव का अनुभव हम कर रहे हैं। उसमें विभाव हैं ही नहीं, फिर उनकी चिंता कैसी? देखो तो सही! धर्मी जीव निश्चितरूप से, निर्भयरूप से स्वतत्त्व का अनुभव करते हैं। अरे, जगत की चिंता हम क्यों करे? हमारे आनंदमय स्वतत्त्व में पर की चिंता कैसी? हमारी शांत-निराकुल अनुभूति में चिंता के दु:ख का भार कैसा? हमारे ज्ञान में तो हमारा चिदानंद तत्त्व विराजमान है, उस ज्ञान में परभाव का बोझ नहीं है। जो ज्ञान परभावों से पृथक् होकर अंतर के परमात्मतत्त्व में लीन हुआ, वह आनंदपूर्वक मोक्ष की साधना कर ही रहा है।

वाह! देखो तो साधक की दशा! आनंदस्वरूप के साधक को अन्य चिंता का बोझ कैसा? आनंद के अवसर में शोक कैसा? हम तो अन्य सभी चिंताओं को छोड़कर अपने एक शुद्धतत्त्व का ही आनंदपूर्वक अनुभव कर रहे हैं। ऐसा अनुभव करके संत कृतकृत्य हो गये हैं और जगत को भी उसकी रीति बतलाकर कृतकृत्य कर दिया है।

अंतर में परिणमन करके सिद्धों के साथ बातें की हैं कि हे सिद्धभगवंत! आप मोक्षदशा में पहुँच गये हैं और मैं भी आपके मार्ग पर आत्म-अनुभव करता-करता मोक्ष में आ रहा हूँ। प्रभो! मैंने परभावों का सारा बोझ अपने ज्ञान में से निकाल दिया है। धर्मात्मा को अपने अनुभव से निर्णय हो गया है कि हमारी चेतना के स्वानुभव में परभावों का अंशमात्र भी नहीं है, ऐसी चेतना के द्वारा हम मोक्ष को साध रहे हैं, फिर अन्य चिंताओं का क्या प्रयोजन? जहाँ चेतना प्रगट होती है, वहाँ चिंता चूरचूर हो जाती है। इस संसार को हटाऊँ और मोक्ष प्राप्त करूँ—ऐसी चिंता भी स्वानुभूति में नहीं है। हमारा एक परम तत्त्व ही हमारे अंतर में निरंतर प्रकाशमान है।—ऐसा बुध पुरुषों का अनुभव है।

## पूज्य श्री कानजीस्वामी के मंगल विहार का कार्यक्रम ( वि.सं. 2028 )

| नगर | तिथि | वार | दिनांक | कुल दिन |
|---|---|---|---|---|
| लाठी | फाल्गुन कृ. 13-14-30 | शनि-रवि-सोम | 12-13-14/2 | 3 |
| अमरेली | फाल्गुन शु. 1-2-3-4-5 | मंगल-बुध-गुरु-शुक्र-शनि | 15 से 19/2 | 5 ( वेदी-प्रतिष्ठा सुद-5 ) |
| आंकडिया | फाल्गुन शु. 6 | रविवार | 20/2 | 1 |
| वडिया | फाल्गुन शु. 7-8-9-10 | सोम-मंगल-बुध-गुरु | 21 से 24/2 | 4 |
| जेतपुर | फाल्गुन शु. 12-13-14 | शुक्र-शनि-रवि | 25 से 27/2 | 3 ( फा.शु. 11 क्षय ) |
| गोंडल | फा. शु. 15-चै.कृ. 1 | सोम-मंगल | 28-29/3 | 2 |
| राजकोट | चै.कृ. 2 से चै.कृ. 20 | बुध से बुध | 1 से 15/3 | 15 ( चै.कृ. 2 दो ) |
| मोरबी | चै. शु. 1-2-3-5 | गुरु-शुक्र-शनि-रवि | 16 से 19/3 | 4 ( चै.शु. 4 क्षय ) |
| जामनगर | चै. शु. 6-7-8-9 | सोम-मंगल-बुध-गुरु | 20 से 23/3 | 4 |
| वांकानेर | चै. शु. 10-11-12-13 | शुक्र-शनि-रवि-सोम | 23 से 27/3 | 4 |
| सुरेन्द्रनगर | चै. शु. 14-15-प्र.वै.कृ.1 | मंगल-बुध-गुरु | 28 से 30/3 | 3 |
| जोरावरनगर | प्र.वै.कृ. 2-3 | शुक्र-शनि | 31-1/4 | 2 |
| लींबडी | प्र.वै.कृ. 4-4-5 | रवि-सोम-मंगल | 2-3-4/4 | 3 ( प्र.वै.कृ. 4 दो ) |
| वढवाणशहेर | प्र.वै.कृ. 6-7-8 | बुध-गुरु-शुक्र | 5-6-7/4 | 3 |
| अहमदाबाद | प्र.वै.कृ. 9 से 0 ) ) | शनि से गुरु | 8 से 13/4 | 6 ( प्र.वै.कृ. 13 क्षय ) |
| पालेज | प्र.वै.शु. 1-2 | शुक्र-शनि | 14-15/4 | 2 |
| अहमदाबाद | प्र.वै.शु. 3 | रविवार | 16/4 | 1 |
| दहेगाम | प्र.वै.शु. 4-5 | सोम-मंगल | 17-18/4 | 2 |
| रखियाल | प्र.वै.शु. 6-7 | बुध-गुरु | 19-20/4 | 2 |
| तलोद | प्र.वै.शु. 8-9 | शुक्र-शनि | 21-22/4 | 2 |
| सोनासण | प्र.वै.शु. 10 | रविवार | 23/4 | 1 |
| झींझवा | प्र.वै.शु. 11 | सोमवार | 24/4 | 1 |
| हिम्मतनगर | प्र.वै.शु. 12-13 | मंगल-बुध | 25-26/4 | 2 |
| नवा | प्र.वै.शु. 14 | गुरुवार | 27/4 | 1 |
| चोरीवाड | प्र.वै.शु. 15-द्वि.वै.कृ. 1 | शुक्र-शनि | 28-29/4 | 2 |
| रणासण | द्वि.वै.कृ. 2-3 | रवि-सोम | 30-1/5 | 2 |
| फतेपुर | द्वि.वै.कृ. 4 से द्वि.वै.शु. 4 | मंगल से मंगल | 2 से 16/5 | 15 ( द्वि.वै.शु. 1 क्षय, शु. 2 जन्मजयंती, शु. 3 पंचकल्याणक प्रतिष्ठा ) |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| बामणवाड | द्वि.वै.शु. 5-6 | बुध-गुरु | 17-18/5 | 2 (शु. 5 रामपुरा-शु. 6 बामणवाड-वेदीप्रतिष्ठा) |
| उदयपुर | द्वि.वै.शु. 7-8-9-10 | शुक्र-शनि-रवि-सोम | 19 से 22/5 | 4 (स्वाध्यायभवन उद्घाटन) |
| कुरावड | द्वि.वै.शु. 11-12 | मंगल-बुध | 23-24/5 | 2 (स्वाध्यायभवन उद्घाटन) |
| मंदसौर | द्वि.वै.शु.. 13-14-15-15 | गुरु-शुक्र-शनि-रवि | 25 से 28/5 | 4 (पूनम दो) |
| प्रतापगढ़ | ज्येष्ठ कृ. 1-2-3-4 | सोम-मंगल-बुध-गुरु | 29 से 1/6 | 4 |
| रतलाम | ज्येष्ठ कृ. 5-6 | शुक्र-शनि | 2-3/6 | 2 |
| इन्दौर | ज्येष्ठ कृ. 6-8-10-11 | रवि-सोम-मंगल-बुध | 4-5-6-7 /6 | 4 (कृ. 9 क्षय) |
| बम्बई | ज्येष्ठ कृ. 12 | गुरुवार | 8/6 | 1 |
| भावनगर | ज्येष्ठ कृ. 13-14-30 ज्येष्ठ शु. 1 | शुक्र-शनि-रवि-सोम | 9-10-11-12/6 | 4 |
| सोनगढ़ | ज्येष्ठ शु. 2 | मंगलवार | 13 जून | |

## चैतन्य महाराजा

बड़े राजा-महाराजाओं को उनके पद-प्रभुता-ऐश्वर्य के अनुसार आदरपूर्वक बुलाने से वे उत्तर देते हैं; उनके पद से विपरीत-हीन संभाषण से वे प्रत्युत्तर नहीं देते; इसीप्रकार राजाओं के भी राजा ऐसे इस चैतन्य-महाराजा को इसके अनंत वैभव की महिमापूर्वक लक्ष में लिया जाये तो वह अनुभव में आता है; किंतु यदि इसे हीन-लघु-पराधीन अर्थात् शुभराग जितना ही माने तो वह इसका अपमान करने के समान है, अर्थात् रागादि जितना मानने से यह चैतन्यराजा सच्चे स्वरूप से अनुभव में नहीं आता। अनंत गुणों के वैभव से परिपूर्ण आत्मा जैसा है, उसे वैसा ही पहिचाने तो वह उत्तर देता है अर्थात् अनुभव में आता है।

[—आत्मवैभव से]

# विविध समाचार

**सोनगढ़** (सौराष्ट्र):—सौराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश में धर्मप्रभावना हेतु पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का मंगलविहार तारीख 12-2-72 को प्रारंभ हुआ। पूज्य स्वामीजी की छत्रछाया में अमरेली शहर में जिनेन्द्र वेदी-प्रतिष्ठा का महोत्सव सानंद सम्पन्न हुआ। पूज्य स्वामीजी का विहार अपने निश्चित कार्यक्रम के अनुसार हो रहा है। विहार का विस्तृत कार्यक्रम इसी में दिया गया है।

## मध्यप्रदेशीय मुमुक्षु-मंडल की प्रगति के समाचार

पिछले जनवरी मास में प्राप्त समाचारों के अनुसार प्रगति के कुछ समाचार हम दे रहे हैं। पूज्य स्वामीजी की अनुकंपा से मध्यप्रदेश में काफी प्रगति हुई है, उसके लिये हम आभारी हैं।

**ग्वालियर**—दिनांक 26 व 27 जनवरी को ग्वालियर नगर की विशाल रथयात्रा में श्री पंडित धन्नालालजी व श्री ज्ञानचंद जैन विदिशा का आध्यात्मिक प्रवचन हुआ; जिससे बाहर के आये हुए मुमुक्षुओं में तत्त्व के प्रति तीव्र जिज्ञासा जागृत हुई।

**बुरहानपुर**—श्री पंडित राजमलजी भोपाल द्वारा 4 दिवस रुककर आध्यात्मिक प्रवचनों के माध्यम से तत्त्व के प्रति मुमुक्षुओं को काफी जागृति कराई है।

**कस्बा थाना**—श्री पंडित ज्ञानचंद जैन विदिशा के द्वारा 3 दिवस रुककर सरल सुबोध भाषा में मुमुक्षुओं को तत्त्वरुचि जागृत करके वीतराग विज्ञान पाठशाला खोलने की प्रेरणा की।

**अशोकनगर**—श्री पंडित धन्नालालजी ग्वालियरवालों ने 4 दिन का अमूल्य समय देकर समाज में अपने प्रवचनों द्वारा काफी धर्म की प्रभावना की।

**विदिशा**—दिनांक 23-1-72 को वीतराग विज्ञान मित्र मंडल की बैठक री लक्ष्मीचंद शिखरचंद जैन सर्राफ झांईपोर के भवन पर हुई, काफी व्यक्तियों ने लाभ प्राप्त किया।

प्रचारमंत्री—मुमुक्षु मंडल विदिशा (म.प्र.)

**बरायठा ( सागर )**—यहाँ श्री वीतराग विज्ञान पाठशाला में परीक्षा-समारोह मनाया गया। मुमुक्षु मंडल की स्थापना छह महीने पहले हो चुकी है।

**मुंगावली ( म.प्र. )**—यहाँ अभी 30-11-71 से 11-12-71 तक सोनगढ़ के विद्वान पंडित श्री चिमनलाल ताराचंदजी पधारे। अत्यंत धर्म-प्रभावना हुई है। समस्त जैन समाज उनके द्वारा किये गये श्री समयसारजी एवं छहढाला पर प्रवचनों से बहुत प्रभावित हुई है। हम आपके एवं श्री चिमनभाईजी के प्रति कृतज्ञता प्रगट करते हैं।

साथ ही चिमनभाईजी के नेतृत्व में यहाँ एक दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल की स्थापना हुई है, जो एक बहुत अच्छी चीज़ है।

अनिलकुमार जैन
दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, मुंगावली (म.प्र.)

## सिद्धक्षेत्र सोनागिरजी में आध्यात्मिक शिक्षण समारोह

तत्त्वाभ्यास एवं जिनवाणी के प्रसाद से ग्वालियर स्वाध्याय प्रेमियों के भाव सिद्धक्षेत्र सोनागिरजी में वार्षिक मेले के अवसर पर दिनांक 29 फरवरी से 4 मार्च 1972 तक एक अल्पावधि आध्यात्मिक शिक्षण शिविर लगाने के हुए हैं।

परम पुनीत सिद्धक्षेत्र के रूप में सोनागिरजी का पर्वत सर्व-विख्यात है। यहाँ से णंगा णंग कुमार तथा 5 करोड़ मुनिराज मोक्ष पधारे हैं। पुरातन काल से ही यह पहाड़ी जैन श्रमणों व दिगम्बर मुनियों की साधनास्थली रही है। उन्हीं की स्मृति स्वरूप, आत्मा साधना हेतु होलिका पर्व से पंचमी तक यहाँ वार्षिक मेला आयोजित किया जाता है। इस वर्ष लग रहा आध्यात्मिक शिक्षण शिविर मेले का विशेष प्रभाविक कार्यक्रम है। यहाँ पर्वत पर शिखरबद्ध नयनाभिराम विविध कालीन शिल्पकला के प्रतीक 78जिनमंदिर हैं। 57 नंबर के मंदिर में मूलनायक श्री 1008चंद्राप्रभु भगवान की पहाड़ में उकरी हुई विशाल प्रतिमा है। पहाड़ी के नीचे 16विशालकाय जिनमंदिर हैं।

ऐसे पवित्र स्थल पर शिक्षणशिविर का आयोजन जैन समाज के परम सौभाग्य का

विषय है। इस अवसर पर आध्यात्मिक प्रवक्ता पंडित श्री कनुभाई दाहोद, पंडित श्री राजमलजी भोपाल, पंडित श्री ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित श्री धन्नालालजी ग्वालियर, पंडित श्री रमेशभाई मलकापुरवालों की पधारने हेतु स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। अत: स्वाध्यायप्रेमी, धर्म-बन्धुओं से निवेदन है कि इस अवसर पर सपरिवार पधारकर प्रवचन, शिक्षण, भक्ति, सिद्धक्षेत्र की वंदना, आदि का अपूर्व लाभ लेवें।

संयोजक :
श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल
चितेराओली, माधवगंज, ग्वालियर-1

**भेदविज्ञानसार** (द्वितीयावृत्ति)—श्री समयसारजी के सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार गाथा 390 से 404 पर पूज्य स्वामीजी के भाववाही प्रवचन।

पृष्ठ संख्या 275, मूल्य मात्र-2.00।

**दशलक्षण-व्रत विधानादि पूजा:—** (रचयिता - कविवर टेकचंदजी)

पृष्ठ - 90; मूल्य - 0.75 पैसे

**हित की बात**—(संपादक—श्री जमुभाई रवाणी, प्रकाशक-ब्रह्मचारी दुलीचंदजी ग्रंथमाला, सोनगढ़)जेबी साइज। पृष्ठ संख्या 116, मूल्य 0.35 पै.

पता—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

## 'आत्मधर्म' मासिक-पत्र के स्वामित्व तथा अन्य ब्योरे के विषय में


प्रकाशन का स्थान — दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक का नाम एवं पता—मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय-सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

राष्ट्रीयता—भारतीय

तंत्री का नाम—पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर

संपादक का नाम—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन, ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन-सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

राष्ट्रीयता—भारतीय

पता—मार्फ़त-दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

स्वामिनी संस्था—दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मैं मगनलाल जैन—घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

मगनलाल जैन

दिनांक 17-2-72

**आत्मा का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—**

# सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

| | | |
|---|---|---|
| 1 | समयसार | (प्रेस में) |
| 2 | प्रवचनसार | 4.00 |
| 3 | समयसार कलश-टीका | 2.75 |
| 4 | पंचास्तिकाय-संग्रह | 3.50 |
| 5 | नियमसार | 4.00 |
| 6 | समयसार प्रवचन (भाग-1) | 4.50 |
| 7 | समयसार प्रवचन (भाग-2) | 4.50 |
| 8 | समयसार प्रवचन (भाग-4) | 4.00 |
| 9 | मुक्ति का मार्ग | 0.50 |
| 10 | चिद्विलास | 1.50 |
| 11 | जैन बालपोथी (भाग-1) | 0.25 |
| 12 | जैन बालपोथी (भाग-2) | 0.40 |
| 13 | समयसार पद्यानुवाद | 0.25 |
| 14 | नियमसार (हरिगीत) | 0.25 |
| 15 | द्रव्यसंग्रह | 0.85 |
| 16 | छहढाला (सचित्र) | 1.00 |
| 17 | अध्यात्म-संदेश | 1.50 |
| 18 | श्रावक धर्म प्रकाश | 2.00 |
| 19 | लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका | 0.25 |
| 20 | दशलक्षण धर्म | 0.75 |
| 21 | मोक्षमार्गप्रकाशक | 2.50 |
| 22 | मोक्षमार्गप्रकाशक (7वाँ अध्याय) | 0.50 |
| 23 | ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव | 3.00 |
| 24 | मंगल तीर्थयात्रा (सचित्र गुज०) | 6.00 |
| 25 | हितपद संग्रह (भाग-2) | 0.75 |
| 26 | सत्तास्वरूप (श्री गोम्मटसार की प्रस्तावना एवं समाधिमरण स्वरूप सहित) | 1.10 |
| 27 | अष्ट-प्रवचन (भाग-1) | 1.50 |
| 28 | अष्ट-प्रवचन (भाग-2) | 1.50 |
| 29 | अध्यात्मवाणी | 1.00 |
| 30 | अमृतवाणी | 1.10 |
| 31 | जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-1 | 0.75 |
| 32 | जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-2 | 1.10 |
| 33 | जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-3 | 0.50 |
| 34 | बालबोध पाठमाला, भाग-1 | 0.40 |
| 35 | बालबोध पाठमाला, भाग-2 | 0.50 |
| 36 | बालबोध पाठमाला, भाग-3 | 0.55 |
| 37 | वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-1 | 0.55 |
| 38 | वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-2 | 0.75 |
| 39 | वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-3 | 0.75 |
| | छह पुस्तकों का कुल मूल्य | 3.30 |
| 40 | वीतरागविज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका | 2.25 |
| 41 | खानिया तत्त्वचर्चा (भाग-1) | 8.00 |
| 42 | '' '' (भाग-2) | 8.00 |

**प्राप्तिस्थान :**

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)